सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री पन्नामोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई- 283202 (आगरा) उ.प्र.

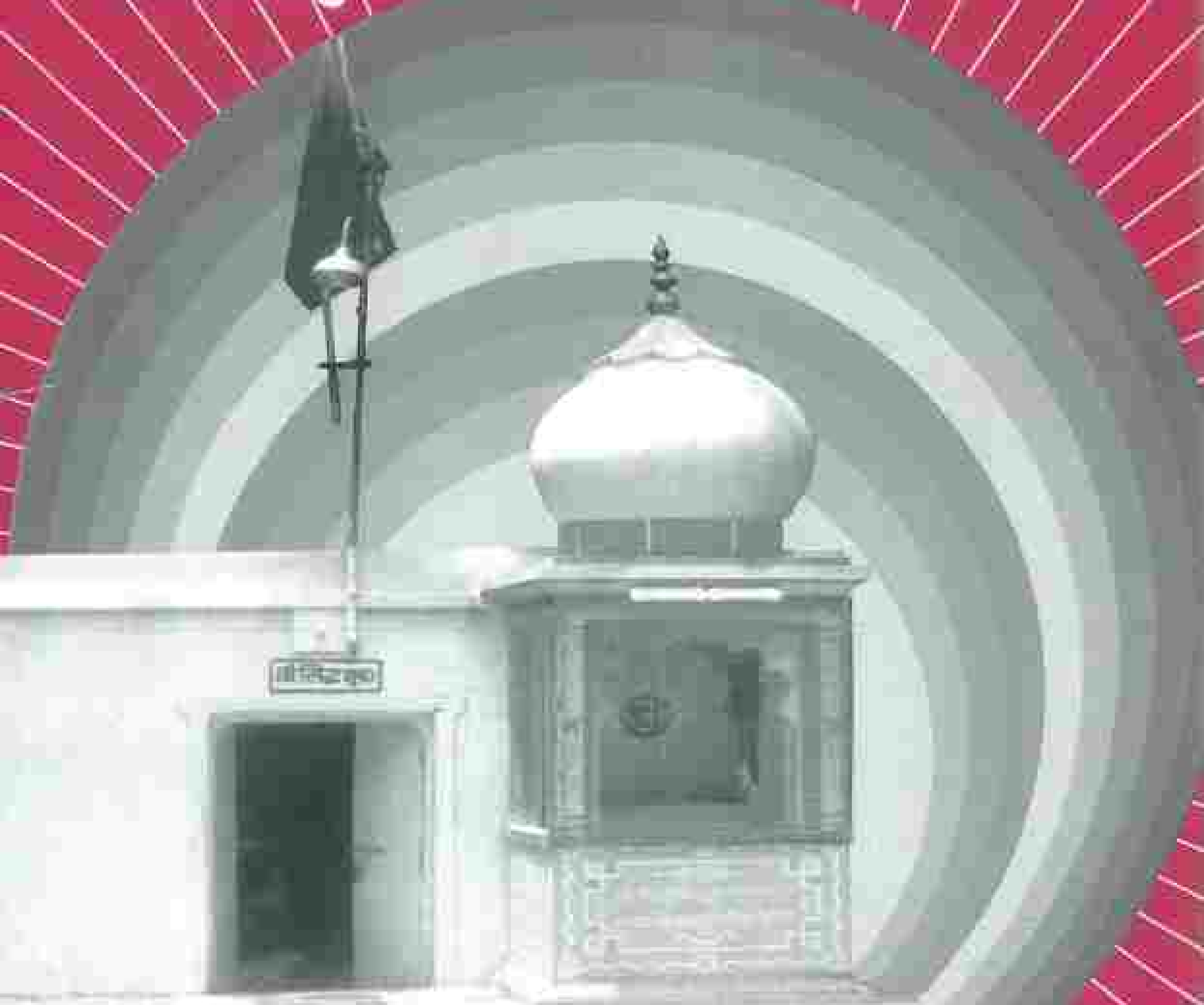

प्रकाशन तिथि : 01.01.2019 मूल्य - एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 360/-

वर्ष : 51 : अंक : 10 जनवरी 2019

अमृतकण

ध्यातृध्याने परित्यज्य क्रमाद् ध्येयैकगोचरम्।
निवातदीपवच्चित्तं समाधिः अभिधीयते।।

समाधि का अन्य नाम धर्ममेघ भी है, क्योंकि इसमें धर्म की सैकड़ों धारायें निकलती है। समाधि से संचित कर्म नष्ट होते है। तथा निर्मल धर्म की वृद्धि होती है।

• • •

द्वैतं मोहाय बोधात्प्राग्जाते बोधे मनीषया।
भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।।
परमार्थिक द्वैतं द्वैतं भजनहेतवे।
तादृशी यदि भक्तिः स्यात्यातु मुक्ति शताधिका।।

(बोधसार)

बोध से पहले का द्वैत मोह में डाल सकता है। परन्तु बोध हो जाने पर भक्ति के लिए बुद्धि से कल्पित द्वैत–अद्वैत से भी अधिक सुन्दर होता है। वास्तविक तत्व तो अद्वैत ही है, पर भजन के लिए द्वैत है। ऐसा यदि भक्ति है तो यह भक्ति मुक्ति से भी सौ गुणी श्रेष्ठ है।

• • •

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्वमुत्तमम्।
सत्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्त मुत्तमम्।।
अव्यक्तातु परः पुरुषो व्यापकोऽलिंग एव च।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति।।

कठोपनिषद् अध्याय 2/वल्ली 3/7–9

इन्द्रियों से तो मन श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि उत्तम है, बुद्धि से उसका जीवात्मा ऊँचा है और जीवात्मा से अव्यक्त शक्ति उत्तम है। परन्तु अव्यक्त से भी वह व्यापक और सर्वथा आकार रहित परमपुरुष श्रेष्ठ है, जिसको जानकर जीवात्मा मुक्त हो जाता है और अमृत स्वरूप आनन्दमय ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

• • •

•••

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

वर्ष 51
अंक 10

जनवरी
2019

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

विश्वे देवा अभिरक्षन्तु

मह्यं यजन्तां ममयानीष्टाकूतिः
सत्या मनसो मे अस्तु।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु।।

(अथर्ववेद)

मेरे प्राप्त करने योग्य इष्ट-कर्म ही मुझको प्राप्त हों, मेरे मन में सत्य-संकल्प ही हों, मैं कभी भी कोई पाप कर्म न करूँ, सब उत्तमगुण और शुभ कर्म करूँ, ईश्वर मेरी रक्षा करें।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज — 3
2. सम्पादकीय — 8
3. नववर्ष मंगलमय हो!– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी — 11
4. श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा– डॉ. विजय सिंह — 13
5. श्रीमती भगवती की पुकार– जगदीश राए बंसल — 17
6. मन पर खान–पान–स्थान एवं व्यक्ति– अन्तू राम यादव — 20
7. मन की एकाग्रता, योग की वर्णाक्षरी है– दिनेश चन्द्र शर्मा — 25
8. चित्त की प्रसन्नता क्यों और कैसे ?– आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा — 27
9. प्रथम सिद्धयोग शिविर नागपुर– अनिल दुबे — 38
10. दतिया का 15वाँ योग शिविर कार्यक्रम — 39

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख

ऋतम्भरा प्रज्ञा

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

मैने योग की महिमा बताते हुए पहले भी तुम्हें समझाया था कि–''**यस्मिन ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति सैषा योग विद्या**'' जिस विद्या के जान लेने पर सभी कुछ जान लिया जाता है वह हमारी योग विद्या है। इस रास्ते पर चलकर ही मनुष्य सर्वज्ञाता बन सकता है। परमाणु '**परममहत्वान्तो ऽस्यवशीकारः**' परमाणु से लेकर महत्तत्व पर्यन्त योगी का अधिकार होता है। योगी ही '**कर्त्तुमकर्तुम्**' बिगड़े को फिर बना दे उसे '**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम**' की शक्ति वाला कहते हैं। गीता में भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने युक्त योगी के लक्षण इस प्रकार बताये हैं–

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्तइत्युच्यते योगी सम लोष्टाश्म–कांचनः।

अर्थात् जो ज्ञान–विज्ञान–तृप्तात्मा हो, कूटस्थ हो, जितेन्द्रिय हो, मिट्टी, पत्थर व सोना जिसकी दृष्टि में समान हो वह युक्त योगी कहलाता है। ये पाँच बातें युक्तयोगी में होनी चाहिए। ज्ञानतृप्तात्मा उसे कहते हैं, जिसने प्रकृति के सारे नियमों व विश्लेषणों को समझकर उन पर अधिकार कर लिया हो अर्थात् जिसने महाभूतों पर, तन्मात्राओं पर, इन्द्रियों पर अधिकार कर लिया हो, वह ज्ञान तृप्तात्मा कहा जाता है।

महाभूतों पर जय का एक उदाहरण देता हूँ। ऋषिकेश में चन्द्रभागा नदी है। काफी दिन पहले एक योगी जल के ऊपर खड़ाऊ पहनकर पानी के ऊपर इस प्रकार आये जैसे कोई जमीन पर चल रहे हों। गंगा के इस तरफ आकर कुछ क्षण रुककर पुनः इसी प्रकार से जल के ऊपर चलते हुये लौट गये। उन महात्मा जी की इस प्रकार की क्षमता को बहुत लोगों ने देखा था। हमारे बच्चे रंगीलाल हैं। वे भी इस घटना को आँखों देखी बात कहकर बताया करते हैं। योग दर्शन में एक सूत्र आता है '**उदान जयाज्जल पंक कण्टकादिष्वसङ्गः उत्क्रान्तिश्च**' अर्थात् उदान वायु पर जय कर लेने पर योगी पानी, कीचड़ आदि में धसता नहीं है। वह जमीन से ऊपर को भी उठ जाया करता है। ऊर्ध्वगमन करने की ताकत उसमें होती है। यह प्रकृति पर हुकूमत का एक उदाहरण है। कूटस्थ का अर्थ है–आत्म ध्यान से विकार रहित स्थिति को

प्राप्त हो जाना। विजितेन्द्रि का अर्थ है, कामनायें उसको विचलित नहीं कर सकती। ऋषिकेश में गंगा किनारे शीशम झाड़ियों में एक महात्मा अवधूत केशवानन्द जी रहते थे। एक बार वह काफी अस्वस्थ हो गये। उन्हें इलाज के लिये डाक्टर के पास ले जाया गया। डॉक्टर ने सलाह दी कि यदि वीर्य खण्डित कर दें तो स्वस्थ हो सकते हैं। उन्होंने इस बात से इंकार कर दिया। उन्हें स्पर्शज्ञान ही नहीं था। ऊर्ध्वरेतस योगी थे वह। उन्होंने पहले ही बता दिया था कि मेरी इच्छानुसार ही अमुक दिन यह शरीर छूट जायेगा। ठीक वैसा ही हुआ। योगी विज्ञान **'तृप्तात्मा'** होता है। इसका मतलब यह होता है कि उसे आत्म साक्षात्कार हो चुका होता है। उसके जड़ चेतन की गाँठ टूट जाती है। कहने को तो हर व्यक्ति कह सकता है आत्म साक्षात्कार हो गया किन्तु आत्म साक्षात्कार के क्या लक्षण हैं? इस बात का संकेत योग दर्शन में मिलता है–**'ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वाद वार्ता जायन्ते'।**

आत्म दर्शन से पहले–पहले योगी में यह क्षमतायें आती हैं। जिस प्रकार से सूर्योदय से पहले हल्का–हल्का उजाला जब होने लगता है तो हमें थोड़ा–थोड़ा मकान, वृक्ष आदि दिखाई देने लगते हैं। वैसे ही योगी को वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान होने लगता है। प्रातिभ ज्ञान की आभा से अमुक व्यक्ति क्या विचार कर रहा है? इस बात का ज्ञान योगी को होने लगता है। **'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा'** वहाँ पर योगी को ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय हो जाता है। **'या मेधां देवगणा पितरश्च समुपास्ते'** जिस मेधा के लिये देवगण और पितर उपासना करते रहते हैं वही मेधा ऋतम्भरा प्रज्ञा है। ऋतम्भरा प्रज्ञा के उदय होने पर **'तज्जः संस्कारोऽन्य संस्कार प्रतिबन्धी'**–अर्थात् ऋतम्भरा के संस्कार अन्य सभी प्रकार के संस्कारों को रोक देता है। इस ऋतम्भरा के साथ ही 'प्रातिभ श्रावण आदि क्षमतायें योगी में आ जाती हैं। ये सब आत्म साक्षात्कार से पहले–पहले होता है अभी आत्म साक्षात्कार नहीं हुआ होता है। प्रातिभ ज्ञान के उदाहरण के रूप में अपने एक बच्चे की घटना सुनाता हूँ। हमारा एक बच्चा रघुनन्दन प्रसाद (टाट बाबा) था। वह श्री सिद्ध गुफा में रह रहा था। एक बार सफीदों के वैद्य राम स्वरूप हमारे पास दीक्षा लेने आये थे। उन्हें दीक्षा के लिये तैयार देखकर टाट बाबा ने कहा–भाई जी, आप गुरु जी से दीक्षा जल्दी ले लें। उनके कहने पर रामस्वरूप ने जल्दी दीक्षा ले ली। दीक्षा ले लेने के बाद उससे पूछा गया कि 'आप दीक्षा के लिये जल्दी क्यों कह रहे थे?' उन्होंने उत्तर दिया–इस समय तुम्हारी स्त्री को लड़का हो चुका है। अब आप को सूतक लग गया है, यदि विलम्ब हो जाता तो आप दीक्षा नहीं ले सकते थे।' लोगों ने पूछा–आपको इस बात का ज्ञान कैसे हुआ कि लड़का होने वाला है?' उन्होंने कहा–पहले मेरे मन में यह बात आई कि लड़का हो रहा है। जब ऐसी कोई भी भावना मेरे मन में आती है वह सत्य होती है फिर मैंने इसे देखना

चाहा, तो मुझे प्रसव होता लड़का भी दिखाई देने लग गया'। इस प्रकार आदर्श की सिद्धि से योगी दूर–दूर की देख लेता है। उसने भी जन्मते बच्चे को इस सिद्धि से देख लिया इसी प्रकार से श्रावण सिद्धि से हजारों कोस दूर की बात को योगी सुन सकता है। हजारों कोस दूर की वस्तु को स्पर्श कर सकता है। **'यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति'** योग विद्या से सब कुछ जाना जा सकता है। हृदय की भूमिकाओं की बात होती है। इस का आधार ध्यान योग ही है। मेरे बड़े गुरु भाई ब्र. गोपालानन्दन जी की मन में इच्छा हुई–सृष्टि कैसे बनी? योगी की एक ऐसी अन्तर्भूमिका होती है जिसमें उसके मन की शंका की बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है। अन्तर्यामी सर्वशक्तिमान गुरुदेव उस ऋतम्भरा प्राप्त योगी के संकल्पों का जवाब दो प्रकार से दिया करते थे। या तो उसकी बुद्धि में ही वे भाव आ जाते हैं जिन प्रश्नों का जवाब चाहता है या ध्यान की अवस्था में उसे आकाश वाणी होती है जिसके द्वारा उसके प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है या अक्षरों के रूप में लिखे हुये उसके सामने आ जाते हैं। इनमें से सबसे उत्तम जवाब वह होता है जिसका हृदय में अपने आप स्फुरण हो जाये। ब्र. गोपालानन्द जी के मन में सृष्टि उत्पत्ति के बारे में जानने की उत्कण्ठा हुई। ध्यान में एक ऋचा सामने आई **'ऋषयों मन्त्र द्रष्टारः'** मन्त्र जिनके सामने आये वह ऋषि कहलाते हैं। ऋचा का प्राकट्य तब समझना चाहिए तब बिना पढ़ी व सुनी बात सामने आ जाये। हम लोग तो वेदों के भाष्य पढ़ते हैं टीकायें पढ़ते हैं। किन्तु योग में एक ऐसी भूमिका होती है जिसमें शब्द सुनने मात्र से उसके अर्थ का ज्ञान हो जाता है। यह भीतर की रूहानी विद्या है। सारे विश्व के प्राणियों की आवाज के अर्थ को योगी समझ लेता है। ब्र. गोपालानन्द जी के सामने प्रकाश पुंज में एक ऋचा आई–

'हिरण्यगर्भः समवर्ततताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकासीत्।
सदाधार पृथ्वीम् द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम्'।

अर्थात् सबसे पहले हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, हिरण्यगर्भ ही ब्रह्म है। उस हिरण्यगर्भ से ही सृष्टि का प्रस्फुटन हुआ। **'तस्माद्वा एतस्माद्वा आकाशः सम्भूतः। आकाशाद् वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथ्वी'**। उस आत्मा से आकाश उत्पन्न होता है उस से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है यह क्रम है। इस ऋचा के आने के पश्चात् उन्होंने इस क्रम को दृश्य के रूप में भी तत्त्वों में परिवर्तित होते देख लिया। इस प्रकार से ऋतम्भरा प्राप्त योगी के लिये भी संसार में अज्ञेय अथवा रहस्य नहीं रहता है। अस्तु।

योगी की उपासना में और अन्य लोगों की उपासना में क्या अन्तर है? यह बतलाना आवश्यक है। योगियों से इतर लोग, देवताओं को आत्म समर्पण करके उनसे थोड़ी–थोड़ी शक्ति लेते हैं, वरदान आदि प्राप्त करते हैं भूत प्रेतादि की उपासनाओं से शक्ति प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार से मनुष्य **'देवानाम् पशुः'** देवताओं का पशु होता है। किन्तु योगी अपनी शक्ति के आप मालिक होते हैं वे दूसरे के आधीन रहकर जीना पसन्द नहीं करते। योगी कुण्डलिनी महाशक्ति को जागृत कर अपनी शक्ति पर अपना नियन्त्रण रखता है **'अदीनाः स्याम् शतम् शरदः'** का पाठ योगी लोग ही पढ़ते हैं। केवल मात्र ध्यान के द्वारा अपने भीतर की ताकतों को जागृत करके सब पर अनुशासन करने वाले एवं प्रकृति पर हुकूमत करने वाले होते हैं–

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र सम दर्शनः।।

युक्त योगी अपने को सभी प्राणियों में स्थित देखता है और सभी प्राणियों को अपने में देखा करता है। यह उसके आत्मस्थिति की बात हुआ करती है। अन्य लोग वरदान आदि के लिए उपासना करते हैं। जबकि योगी लोग स्वयं **कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्** की सामर्थ्य वाले होते है। मनुष्य देवताओं की उपासना करते है कभी राम की उपासना करते हैं शक्ति के कारण। दुनिया शक्ति का पुजारी है। उनके पास अपनी शक्ति नही होती इसलिये शक्ति वालों की उपासना करते हैं जबकि योगी 'ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा' होकर सर्वसमर्थ होते हैं। योग कहाँ से चलता है यह मैंने तुम्हें कई बार बताया हुआ है। धारणा, ध्यान समाधि की पुष्टि पाकर फिर संयम की स्थिति पर पहुँचता है। योगी ही किसी निर्णय पर पहुँच सकता है। क्योंकि वह आत्म ध्यान परायण होता है। मैंने तुम्हें ब्र. गोपालानन्द जी के हाथ कटने की बात बताई थी। श्री प्रभु जी से लोगों ने पूछा 'प्रभु जी इनका हाथ क्यों कटा? यह तो योगी हैं ध्यानी हैं फिर उनके साथ ऐसा क्यों? कुतर्क करने वाले लोग जल्दी कुछ न कुछ बोल लिया करते हैं किन्तु प्रभु जी ने कहा–तुम लोग स्वयं ध्यान में देखो कि इसका हाथ क्यों कटा। हमारे गुरु भाईयों ने ध्यान शक्ति से सब कुछ जान लिया कि क्यों कटा? बाद में तथ्य का पता लगाने पर सत्य पाया। अस्मितानुगत योग पर आरूढ होने पर योगी की अस्मि अस्मि, इस एक ही प्रकार की वृत्ति बनी रहती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा इसके बाद की स्थिति है।

ज्यों गूंगा गुड़ खाये नैनन स्वाद सरहाये।

इस स्थिति को योगी स्वयं ही अनुभव कर सकता है। हर वस्तु के पीछे जो परम सत्य है

उसका दर्शन योगी को होता है। सब कुछ यथार्थ देखता है। ऋतम्भरा प्राप्त योगी यदि भविष्यवाणी करता है तो वह सत्य होता है। पुराणों में एक भविष्य पुराण है। इसमें कलिकाल में क्या-क्या होगा, इस बात की भविष्यवाणी पहले से ही की हुई है। इसके अनुसार-

पृथ्वी में औषधियों में रस नहीं रहेगा। इसके गुणों में क्षीणता आ जायेगी। कागज की मुद्रा होगी। आज कागज की ही मुद्रा है। पत्नियाँ पति के विरुद्ध चलने वाली होंगी। पुत्र, पिता को कलंकित करने वाले होंगे। पृथ्वी निर्बीज होती जायेगी-धन-धान्य की कमी होगी, आदि-आदि। आज सब सही घटित हो रहे हैं।

भविष्यवाणी करने का अधिकारी ऋतम्भरा प्राप्त योगी ही हो सकता है अन्य कोई नहीं। अन्य यदि भविष्यवाणी करेंगे तो सत्य नहीं निकलेगी। ऋतम्भरा प्राप्त ऋषि ही भविष्यवक्ता हो सकते हैं। जो लोग समाधि का अभ्यास करते हैं वे अवश्य ही उत्कर्ष पाते हैं। सिद्धों के दर्शन होने पर वे तुम्हारी शक्ति को बढ़ा देते हैं। ऋतम्भरा प्रज्ञा के उदय होने पर एक विशेषता यह तो होती है कि ऋतम्भरा के जो नये संस्कार बनते हैं। वे अन्य सभी हेय संस्कारों के प्रतिबन्धी होते हैं। **'तज्जः संस्कारोऽन्य अन्य संस्कार प्रतिबन्धी'** ऋतम्भरा के संस्कारों के उदय होने पर जन्म मरण के चक्कर में डालने वाले संस्कार रुक जाते हैं। पुराने संस्कारों को उसी में भोग लेता है। इसलिए योग ही उत्तमोत्तम मार्ग है। मनुष्य को अपने ध्येय से विचलित नहीं होना चाहिए। हृत्पुण्डरीक अथवा हृदय कमल को सीधा कर लोगे तो खेचरी आदि मुद्रायें स्वाभाविक होने लगेंगी।

अस्मिवृत्ति के प्रकट होने के बाद **'अहं ब्रह्मास्मि'** वाली बात भी स्वयं प्रकट हो जाती है। केवल मात्र योग की धारणा को पुष्ट करते चलो। हम योगी हैं ऐसी धारणा बनाते चलो **'जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते'**। योग का जिज्ञासु भी शब्द ब्रह्म-कर्मकाण्ड से आगे निकल जाता है। **'भवेद्वीर्यवती गुप्ता गुरु वक्त्र समुदभवः'**।

गुरु मुख से सुनी विद्या वीर्यवती होती है अतः मेरे मुख से योग के पवित्र सिद्धान्तों को सुनकर अपने को पवित्र योग मार्ग की ओर चलाओ। यदि ऐसा करोगे तो श्री प्रभु जी की कृपा अवश्य होगी।

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

सम्पादकीय—

ध्यान योग का अनुपम फल व प्रभाव

आचार्य (डा.) दासलाल जी महाराज

अष्टाङ्ग योग में 'ध्यान' योग साधना का अन्तरंग भाग है। यम नियम से लेकर प्रत्याहार तक बहिरंग कहे गये हैं तथा धारणा, ध्यान एवं समाधि योग के अन्तरंग अंग हैं। धारणा ध्यान से ही आध्यात्म की यात्रा प्रारम्भ होती है इसे ही अन्तर्मुखी होना कहते हैं। धारणा में देहस्थ चक्र विशेष पर गुरुदेव की आज्ञा से ध्यान का अभ्यास करना होता है उस विशेष चक्र पर ही साधक को ध्यान करना होता है जब तक वह चक्र सिद्ध न हो जाये और गुरुदेव आगे के चक्र के ध्यान की आज्ञा न दें। जिस इष्ट या ध्येय की धारणा की जाती है उसी का ध्यान एवं उसी में समाधि के अभ्यास से ही सिद्धि मिलती है।

मानव का शरीर पाञ्चभौतिक होने से जड़ कहा गया है किन्तु मन और बुद्धि आत्मा के संस्पर्श से चेतनवत् हो जाते हैं। मनुष्य की बुद्धि जिस गुण से प्रभावित होती है उस समय वह उस गुण के प्रभाव में रहती है। तभी तो कहा गया है **'यो यच्छ्रद्धः स एव सः'** अर्थात् जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वही उसका रूप होता है। उसकी समझ व आस्था भी उसी प्रकार की होती है जिस प्रकार का गुण उस समय कार्य कर रहा होता है।

एक निश्चित स्थान पर ध्यान करते हुए साधक के मन में प्रारम्भ में संकल्प–विकल्प का क्रम चलता रहता है। ध्यानावस्था में ही ये संकल्प–विकल्प ज्यादा गतिमान होते हैं क्योंकि ध्यान की अवस्था में साधक का मन बहिर्मुखी वृत्ति से उलटकर अन्तर्मुखी होने लगता है। धीरे–धीरे संकल्प–विकल्प का क्रम समाप्त होकर चित्त एकाग्र होने लगता है। वृत्तियाँ विलीन होकर एकमुखी या ध्येय में एकाग्र होने लगती हैं।

योग दर्शन में चित्त की चंचल वृत्तियों को समाप्त करने के लिए एक सूत्र आता है— **'ध्यान हेयास्तद्वृत्तयः'** अर्थात् ध्यान से चंचल वृत्तियों को क्लिष्ट वृत्तियों को हटा देना

चाहिए। सम्प्रज्ञात समाधि में चित्त पूर्ण सतोगुणी हो जाता है। चित्त प्रकाशित होने लगता है। क्लिष्ट वृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं। मनुष्य कितना भी पापी या क्रूरकर्मा हो यदि योग मार्ग में आ जाता है और मन को अन्तर्मुखी बना लेता है तो उसके सब पाप कर्म नष्ट हो जाते हैं और वह शीघ्र ही पवित्र हो जाता है। गीता में भगवान कहते हैं–"हे अर्जुन ! यदि तू पापियों का शिरोमणि भी है तो भी आत्म ज्ञान की नौका से तू समस्त पापों से छूटकर परम शान्ति को प्राप्त हो जायेगा। जिस प्रकार अग्नि ईंधन को समाप्त कर देती है वैसे ही ज्ञान रूपी अग्नि सम्पूर्ण कर्म व कर्मफल को भस्म कर देती है।" (गीता 4/36–37)

क्लेशों की पूर्ण निवृत्ति के लिये योग दर्शन में धारणा, ध्यान व समाधि का निरूपण किया गया है। ध्यान, धारणा व समाधि एक विषयक ही होना चाहिए अर्थात् जिस ध्येय पर धारणा का अभ्यास किया उसी पर ध्यान एवं समाधि का अभ्यास करना चाहिए। जब इन तीनों में अभ्यास परिपक्व हो जाये और तीनों प्रक्रिया के साथ ध्येय पर चित्त केन्द्रित की जाये तो उसे 'संयम' के नाम से जाना जाता है। यह संयम ही समस्त विभूतियों या शक्तियों की आधारशिला है। समस्त विभूतियों का आधार संयम ही है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के बारहवें अध्याय में भगवान ने कर्मफल के त्याग का उपाय ध्यान को बतलाया है। देखिये यह श्लोक–

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासात ज्ञानाद्ध्यानम् विशिष्यते
ध्यानात कर्म फल त्यागः त्यागाच्छन्तिरनन्तरम्।

अर्थात् अभ्यास (मन्त्रजाप) से ज्ञान श्रेष्ठ है। ज्ञान से भी ध्यान श्रेष्ठ है। इस प्रकार से गीता में ध्यान पर बहुत बल दिया गया है। **'ध्यान योग परोनित्यम'** कहकर पुष्टि की है।

ध्यानज सुख–ध्यानजन्य सुख का अनुभव तो साधक स्वयं ही करता है। यह स्वसंवेद्य है। शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। गीता के पाँचवें अध्याय में भगवान कहते हैं–

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनियत्सुखम्
स ब्रह्म योग युक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते।

ब्रह्मयोग युक्त अर्थात् बाहर के विषयों से आसक्ति रहित साधक आत्म में स्थित जिस सुख को प्राप्त करता है वह अक्षय सुख है। (गीता 5/21)।

छटे अध्याय में भी भगवान कहते हैं–

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्‌बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः।

अर्थात् इन्द्रियों से अतीत केवल शुद्ध बुद्धि के द्वारा ग्रहण करने योग्य जो आनन्द है उस सुख में स्थित होकर उस स्थिति से कभी विचलित होता ही नहीं है। और उससे आगे कोई सुख भी नहीं मानता है। (गीता 6/21)

उपनिषदों में इस ब्रह्मानन्द सुख के विषय में श्लोक आया है–

समाधि निर्धौत मलो चेतस्य

आत्मनि यत् सुख भवेत्

न शक्यते वर्णयितुम गिरा

तत स्वयं अन्त:करणेन गृह्यते।

अर्थात् समाधि के दृढ़ अभ्यास के द्वारा जिस साधक के चित्त के मल धुल चुके हैं उसको जो आनन्द मिलता है उसका शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता, वह तो केवल अन्त:करण में ही ग्रहण किया जा सकता है।

महाभारत में भी शान्ति पर्व में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को समाधि–सुख का वर्णन करते हुए कहते हैं–

न तत पुरुषकारेण न च दैवेन केनचित्

सुखमेष्यति तत तस्य यदेवं संयतात्मन:।

अर्थात् मनोनिग्रह पूर्वक ध्यान करने वाले योगी को जो दिव्य सुख प्राप्त होता है वह सुख मनुष्य को किसी दूसरे साधन से, दैवयोग से नहीं मिल सकता। वे आगे फिर कहते हैं–

सुखेन तेन संयुक्तो रंस्यते ध्यान कर्मणि

गच्छन्ति योगिनो ह्येवम् निर्वाणं तन्निरामयम्।

अर्थात् उस ध्यान जनित सुख से सम्पन्न होकर योगी ध्यान योग में अधिकाधिक अनुरक्त होता जाता है। इस प्रकार योगी लोग दु:ख–शोक से रहित हुये निर्वाणपद को प्राप्त कर लेते हैं।

इस प्रकार महाभारत, गीता एवं भागवत महापुराण आदि में 'ध्यान' के महत्व को स्वीकारा है और इसे आत्म दर्शन के प्रमुख उपाय के रूप में स्वीकारा है। ध्यान से ही आध्यात्म की सीढ़ियाँ पार की जा सकती हैं। अत: योगी को ध्यान पर ही पूरा बल देना चाहिए।

जय गुरुदेव जी की !

सम्पादकीय (नववर्ष पर विशेष)

नववर्ष मंगलमय हो!

—योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

ईस्वीय वर्ष 2018 बीत गया है। वर्ष के मृदु एवं कटु अनुभव मन में लिये आगामी सुखमय जीवन की आकांक्षा उर में लिये नये वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं। मनुष्य अपने जीवन में हर क्षण कुछ न कुछ नया सीखता रहता है। ईश्वर की मनुष्य को सबसे बड़ी देन बुद्धि है। इसी से वह अपने हित व अहित की बात सोचता है। दूसरे जीवों की अपेक्षा मनुष्य की सोच एवं क्षमता बहुत अधिक है जो स्वयं में एक चमत्कार है। मनुष्य शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्म में पूर्ण स्वतन्त्र है किन्तु फल में स्वतन्त्र नहीं है।

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'। (गीता 2/47)

यह भगवद्वचन है ! मनुष्य पापाचरण करता है किन्तु फल शुभ कर्म का चाहता है जो सम्भव नही होता है। मनुष्य को प्रदान की गई अपार विचार शक्ति का प्रयोग सकारात्मक कार्य के लिये ही करना चाहिये नकारात्मक व विनाशात्मक कार्य के लिये नहीं।

गीता में भगवान् ने जीवन में हर क्षण योग के प्रयोग की बात कही है। योग की शिक्षा मनुष्य को सदा ही सकारात्मक दिशा में कार्य करने की प्रेरणा देती है। मनुष्य को योग की शिक्षा जीवन में उसी प्रकार से उतारनी चाहिये जिस प्रकार से वह अपने शरीर को आभूषणों से सजाता है। मानव का समग्र जीवन योग की शिक्षाओं से ही उज्ज्वल बन सकता है। योग की विद्या को जीवन में उतारने के लिये बहुत धैर्य की आवश्यकता होती है। भगवान् गीता में कहते हैं—

''योगो अनिर्विण्ण चेतसा'' (गीता 6/23)

अर्थात् बिना उकताये धैर्यपूर्वक योग करते रहना चाहिये। धैर्य पूर्वक लम्बे समय तक योग के अंग–उपांगों का अनुशीलन मनुष्य को जीवन में उन्नति के अन्तिम शिखर तक पहुँचा सकता है। महर्षि व पतंजलि एक सूत्र में बतलाते हैं कि साधक को लम्बे समय तक, निरन्तरता पूर्वक एवं सत्कारपूर्वक अभ्यास करने पर ही दृढ़ भूमि प्राप्त होती है। सत्कारपूर्वक का आशय है अत्यन्त श्रद्धा के साथ तत्परतापूर्वक एवं संयमित जीवन जीते

हुये साधना करने पर सिद्धि प्राप्त होती है। योग पशुवत मूढ़ व्यक्ति को भी श्रेष्ठ नर तथा फिर नारायण बना देता है। योगी को निष्काम भाव से साधना करते रहना चाहिये। वेद भगवान् की आज्ञा है–

''कुर्वन्नैयेह कर्माणि जिजिविशेत शतः समाः''

अर्थात्, मनुष्य को निष्काम भाव से सौ वर्ष की आयु की इच्छा रखते हुये साधना रुप कर्म में रत रहना चाहिये। ऐसा करते हुये मनुष्य कर्म फल से लिप्त नहीं होता। भौतिक सुखों की इच्छा को त्याग कर आत्म लाभ की इच्छा से कर्मरत रहना चाहिये। योगी लोग आसक्ति रहित होकर आत्म शुद्धि के लिये कर्म करते ही रहते हैं।

''योगिनः कर्म कुर्वन्ति सगं त्यक्त्वा आत्मा शुद्धये''। (गीता 5/11)

सांसारिक कामनाओं के त्यागपूर्वक साधना करने से ही साधक सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। गीता में भगवान कहते है–

''न ह्यसंन्यस्त संकल्पो योगी भवति कश्चन''। (गीता 6/2)

योगी अपनी सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिये ध्यान नहीं करता प्रत्युत चित्त शोधन के लिये ही प्रयासरत रहता है। चित्त की पूर्ण शुद्धि ही योगी का लक्ष्य है इसी से ही कालान्तर में वह कैवल्य लाभ प्राप्त करता है। पातंजल दर्शन का सूत्र है–

''सत्व पुरुषयो शुद्धि साम्ये कैवल्यम्'' (विभूतिपाद सू. 55)

अर्थात् बुद्धि (चित्त) एवं पुरुष दोनों की ही पूर्ण शुद्धि होने पर कैवल्य लाभ होता है। योगी का लक्ष्य कैवल्य लाभ प्राप्त करना है। तभी योगी सर्वथा क्लेशों से मुक्त होकर अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित रहता है।

आइये! नववर्ष की इस पावन वेला में हम सर्व शक्तिमान श्री प्रभु जी से प्रार्थना करें कि वे हमें सद्‌बुद्धि देते हुये हमारे योग और क्षेम का वहन करें अर्थात् जो स्थिति प्राप्त नहीं है उसे प्राप्त करें तथा प्राप्त स्थिति का भी वे संरक्षण करें। प्रभु का चिन्तन करने वाले की लौकिक आवश्यकतायें तो अनायास ही पूरी हो जाती हैं। अतः हम लोग पूर्णतया योगनिष्ठ होकर सतत् ध्यानाभ्यास करते रहें यह शक्ति प्रभु प्रदान करें।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्‌दुःख भाग्भवेत्।।

इति शम्।

|| ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः ||

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

अब बाईसवें अध्याय में चीर-हरण की कथा कही गयी है। इस अध्याय के सरल वृतांत को अनुभूतियों से युक्त उच्च कोटि के महात्माओं ने भिन्न-भिन्न प्रकार से तात्विक आलोचना एवं व्याख्या किया है। इस अध्याय में काम, रमण, रति आदि शब्दों का लौकिक अर्थ लेकर मूढ़-चित्त प्राणी भ्रमित होता रहता है।

अध्यात्मवादी श्रीकृष्ण को आत्मा के रूप में तथा गोपियो को वृत्तियों के रूप में लेकर 'चीर-हरण' लीला वृत्तियों के आवरण नष्ट करने की लीला है।

दूसरी ओर आठ वर्ष के कृष्ण द्वारा नग्न स्नान की कुप्रथा को नष्ट करने हेतु किया गया। तथा क्षमा-प्रार्थना रूप प्रायश्चित भी करवाया गया। 'न नग्नः स्नायात' यह शास्त्र ने मर्यादा दे रखी है।

गोप कुमारियाँ रस-राज कृष्ण में अनुरक्त थीं। वे हेमन्त ऋतु आने पर सभी प्रातः एक साथ यमुना जी में स्नान कर कात्यायनी देवी की विधि पूर्वक पूजा करती थीं व श्रीकृष्ण को पति रूप में पाने की कामना पूर्ति हेतु वरदान चाहती थीं।

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोपसुतं देवी पतिं मे कुरु ते नमः।।

वे कुमारियाँ एक महिने तक भद्रकाली की इन्हीं कामनाओं की पूर्ति हेतु उपासना करती रहीं।

भगवान शुकदेवजी कहते है-परीक्षित् ! भगवान श्री कृष्ण सनकादिक योगियों और शंकर आदि योगेश्वरों के भी ईश्वर हैं। गोपियों की अभिलाषा पूर्ण करने हेतु एक दिन प्रातः ही ग्वाल-बालों के साथ उन पर कृपा करने यमुना तट पर गये-

भगवानस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगयोगेश्वरः।
वयस्यैरावृतस्तत्र गतस्तत्कर्मसिद्धये।।8।।

अ. 22 स्क. 10 पूर्वार्ध

जल में नग्न स्नान करती गोप कुमारियों के वस्त्र लेकर कदम्ब के ऊपर चढ़कर बैठ गये। गोपियाँ यह देखकर लज्जित होकर वस्त्र की याचना करने लगीं। भगवान ने कहा देखो मैं कभी असत्य नहीं बोलता। तुम सभी यहाँ आकर अपने वस्त्र ले जाओ। कुमारियाँ भिन्न–भिन्न प्रकार की दलील देकर कृष्ण से अपने वस्त्र माँग रही थी।

अन्त में वे अपने दोनों हाथों से गुप्त अंगों को छिपाकर यमुना जी से बाहर निकलीं। उनके इस शुद्ध भाव से भगवान बहुत ही प्रसन्न हुये।

भगवान गोपियों से बोले–गोपियों ! तुम लोगों ने जो व्रत लिया था, उसे भली प्रकार पूर्ण किया। परन्तु अनुष्ठान में वस्त्रहीन होकर स्नान जो किया, वह जल के देवता वरुण का तथा यमुना जी का अपराध किया है। अत: इस दोष की शान्ति के लिये तुम सभी हाथ जोड़ कर सिर से लगाते हुए झुककर उन्हें प्रणाम करो और अपने–अपने वस्त्र ले जाओ। भगवान की आज्ञा का सभी ने पालन किया और अपने वस्त्र प्राप्त किये। परन्तु श्री कृष्ण प्रेम आराधना करने वाली गोपियाँ वहाँ से किंचित हटी नहीं। वे सभी अपने प्रियतम के समागम के लिये उन्हीं की ओर लजीली चितवन से देखती रहीं।

यह देख भगवान ने आश्वस्त किया–'मेरी परम प्रेयसी कुमारियों ! मैं तुम्हारी अभिलाषा का अनुमोदन करता हूँ तुम्हारा संकल्प सत्य होगा। जिन्होंने अपना मन और प्राण मुझे समर्पित कर दिया है, उनकी कामनाएँ सांसारिक भोगों की ओर ले जाने में समर्थ नहीं होती। क्या ? भूने हुए बीज कभी अंकुरित होते हैं ?

कुमारियों ! अब तुम सभी अपने–अपने घर लौट जाओ। तुम्हारी साधना सिद्ध हो गयी है। तुम आने वाली शरद ऋतु की रात्रियों में मेरे साथ विहार करोगी। इसी उद्देश्य से तुमने यह व्रत और कात्यायनी देवी की पूजा की थी–

याताबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपा:।
यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सती:।।27।।

अ. 22 स्क. 10 पूर्वार्ध

उपरोक्त चीर–हरण प्रकरण से यह बात स्वत: सिद्ध होती है कि कैसा भी साधक अपनी शक्ति से, अपने संकल्प से, अपने दृढ़ निश्चय से पूर्ण समर्पण नहीं कर सकता। समर्पण भी एक क्रिया है अत: अन्त में करने वाला असमर्पित ही रह जाता है। अन्तरात्मा का पूर्ण समर्पण तब होता है, जब भगवान साधक के संकल्प के साथ संकल्पकर्ता को भी स्वीकार करते है। हम समर्पण की तैयारी करते है पूर्ण तो भगवान ही करते हैं।

दशम् स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय में ऐसा विवरण दिया जा चुका है कि भगवान की रूप–माधुरी, वंशीध्वनि और प्रेममयी लीलायें देख सुनकर गोपियाँ मुग्ध हो गयीं। बाईसवें अध्याय में उसी प्रेम पूर्णता हेतु साधन में लग गयीं। अन्त में भगवान ने आकर उनकी साधना पूर्ण की। तेईसवें अध्याय में यज्ञ पत्नियों पर भगवान ने किस प्रकार कृपा की उसका वर्णन है।

एक बार गोचारण करते हुये ग्वाल–बालों ने श्री कृष्ण से कहा कि हमें अत्यन्त भूख लग रही है। कोई उपाय करो। भगवान श्री कृष्ण ने ग्वाल–बालों को कहा कि यहाँ से थोड़ी दूर पर स्वर्ग की कामना से वेदवादी ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं उन्हें हमारा तथा बलराम जी का नाम लेकर थोड़ा भात माँग लाओ। वहाँ जाकर जैसा श्री कृष्ण ने सिखाया था वैसा ही उन्होंने ब्राह्मणों के समक्ष निवेदन किया। परन्तु ब्राह्मणों ने उनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। निराश ग्वाल–बाल ने लौटकर श्री कृष्ण तथा बलराम से बता दिया।

भगवान श्री कृष्ण ने हँसकर कहा–निराश नहीं होना चाहिये। अबकी उनकी पत्नियों के पास जाओ उनसे कहना राम और श्याम यहाँ आये हैं। वे तुम्हें जितना भोजन चाहोगे वे तुम्हें देंगी। उनका मन सदा मुझमें लगा रहता है।

ग्वाल–बालों द्वारा जब ब्राह्मण पत्नियों ने सुना कि राम–श्याम गौचारण करते हुये इधर दूर चले आये है तथा उनके साथी भूखे हैं। उन सबों ने उत्तमोत्तम खाद्य पदार्थ लेकर स्वयं उनके पास जाने के लिये उद्यत हुईं यद्यपि उनके पति उन्हें रोकते रहे। वे सभी श्री कृष्ण की लीलाओं का वर्णन सुन–सुनकर अपने मन को श्री कृष्ण प्रेम में रंग डाला था। ब्राह्मण पत्नियों को आया देख, भगवान ने कहा–महाभाग्यवती देवियों ! तुम्हारा स्वागत है। तुम लोग हमारे दर्शन की इच्छा से आयी हो, यह तुम्हारे प्रेमपूर्ण हृदय वालों के योग्य ही है। मैं तुम्हारे प्रेम का अभिनन्दन करता हूँ। तुम लोग मेरा दर्शन कर चुकीं। अब यज्ञशाला लौट जाओ जिससे तुम्हारे पति तुम्हारे साथ मिलकर अपना यज्ञ पूर्ण कर सकें। देवियों ! यहाँ से जाने पर पति–पुत्र, भाई–बन्धु कोई भी तुम्हारा तिरस्कार नहीं करेगा। अब तुम मुझमें युक्त हो गयी हो अतः सारा संसार तुम्हारा सम्मान करेगा।

इधर यज्ञ कर्ता ब्राह्मणों को मन में बड़ा पश्चाताप हुआ कि भगवान श्री कृष्ण की आज्ञा की हमने अवहेलना की है। उन्होंने स्त्रियों के साथ मिलकर यज्ञ पूरा किया। वे वेदज्ञ ब्राह्मण अपनी पत्नियों के प्रेमाभक्ति को देख सोचने लगे–अहो ! न इन्होंने तपस्या की है और न आत्म–अनात्म का चिंतन ही किया है फिर भी इनके प्रेम का क्या कहना ? समस्त योगेश्वरों

के ईश्वर पुण्यकीर्ति भगवान श्री कृष्ण के चरणों में इनका दृढ़ प्रेम है। वे ही भगवान विष्णु स्वयं श्रीकृष्ण के रूप में यदुवंशियों में अवतार लिये हैं, यह जानते हुए भी हम इतने मूढ़ हैं कि उन्हें पहचान न सके–

स एष भगवान् साक्षाद् विष्णुर्योगेश्वरेश्वर:।
जातो यदुविष्वत्यश्रृण्म् ह्यपि मूढ़ा न विद्महे।।48।।

अ० 23 स्क० 10 पूर्वार्ध

निश्चय ही, भगवान् की माया बड़े–बड़े योगियों को भी मोहित कर लेती है। तभी तो हम कहलाते हैं, मनुष्यों के गुरु और ब्राह्मण, परन्तु अपने सच्चे उद्देश्य को भूले हैं–

नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी।
यद् वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजा:।।

सूचना

14 जनवरी 2019 से प्रयागराज में कुम्भ का मेला प्रारम्भ हो रहा है। अपने आश्रम का शिविर योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज श्री सिद्धगुफा संवाई के नाम से लगेगा जो सेक्टर 15 में तुलसी मार्ग, शिवाला रोड क्रॉसिंग के पास होगा। यह केम्प दारा गंज सब्जी मण्डी के नीचे स्थित होगा।

मुख्य स्नान पर्व 14 जनवरी मकर संक्रांति, 21 जनवरी पौष पूर्णिमा का स्नान, 4 फरवरी मौनी अमावस्या तथा 10 फरवरी को वसंत पंचमी का स्नान तथा 19 फरवरी को माघ पूर्णिमा का स्नान रहेगा।

शुभेच्छु
साधकगण
श्री सिद्धगुफा संवाई धाम
आगरा

।। ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

श्रीमती भगवती की पुकार

जगदीश राए बंसल मो. 9212434003

अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक गुरुओं के महा गुरु प्रभुजी रामलाल जी महाराज एवं प्रातः स्मरणीय अनन्त विभूषित योग योगेश्वर गुरु देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की महिमायें इतनी विशाल हैं कि हमारी बुद्धि में ज्यों की त्यों नहीं आती और जितनी हमारी बुद्धि में आती हैं उतनी महिमा हमारे मन में नहीं आती और जितनी हमारे मन में आती हैं, उतनी हमारे कहने में नहीं आती और जितनी हमारे कहने में आती हैं, उतनी महिमा हमारे लिखने में नहीं आती। फिर भी हम देखते हैं कि हृदय सम्राट शक्ति दाता गुरुदेव जी के श्री चरणों में क्षणिक भी चिन्तन करने वाले अशरण–शरण पर अनाथ–नाथ की कृपायें अकारण ही हो जाती हैं।

इसी प्रकार का करुणा कृपा प्रसंग दिल्ली निवासी 64 वर्षीय आदरणीय भ्राता श्री विनोद कुमार जी ने दीपावली त्योहार पर अपने आर. के. पुरम आश्रम में सुनाया कि हम पहले नेता जी नगर में रहते थे। गुरुदेव जी जब भी दिल्ली में अपना योग प्रचार कार्यक्रम रखते थे तो पास ही निवास करने वाले श्री देवी चन्द सिसोदिया जी की कोठी पर अवश्यमेव दर्शन देते थे। श्री सिसोदिया जी के रुझान को देखते हुए मेरी स्व. माता श्रीमती भगवती देवी भी गुरु जी के दर्शन का लाभ उठाती रहती थीं। परिणामतः मेरी माता जी की अनन्य श्रद्धा देख कर जगत नियन्ता जी ने दीक्षा की मनुहार स्वीकार कर दीक्षा देने की कृपा कर दी। मेरी माता जी पढ़ाई–लिखाई एवं सामाजिक विचारों से अनभिज्ञ थीं। मगर अपने मखमली शिष्टाचार के कारण गुरु भक्ति से ओतप्रोत, आरती पूजा, ध्यान–धारणा आदि गुरु आज्ञाओं का पालन करना उनकी दिनचर्या बन गया था। घर का कार्य भार भी माँ के कन्धों पर था। मैं डी.टी.सी. में सेवारत था। अब सेवा मुक्त हो चुका हूँ। दीक्षित होने के पश्चात् मेरी माँ अपने मन में संजोए हुए थी कि कभी अन्तर्यामी गुरुदेव भगवान हमारे गरीब खाने में भी पधारें। फिर मन ही मन स्वयं से कहतीं–नहीं–नहीं, पगली! यह नहीं हो सकता। सिसोदिया जी तो बड़े सरकारी बाबू हैं। कोठी, कार, नौकर, चाकर वाले ठाठ–बाट के रोबदार अफसर साहिब हैं, आश्रम के कार्यों का अंग हैं। मैं कैसे साहस करूँ कि गुरुजी मेरे घर आयें? कदापि नहीं करूँगी यह भूल, अन्यथा जग हँसाई होगी....। ये विचार माता श्री ने मुझ से कभी साझा नहीं किए, क्योंकि वह

मुझे कभी उदास नहीं देखना चाहती थीं। मेरी माँ का भाग्य कैसा ही रहा हो परन्तु विचार उच्च स्तर के थे। ऐसी थी मेरी प्यारी–प्यारी माँ–

मेरे गुनाहों को वो माफ कर देती थी
बहुत गुस्से में भी होती तो प्यार देती थी
लभो में हमेशा दुआ रखती थी
आप जानिए ऐसे मेरी माँ होती थीं।।

एक बार की बात है कि गुरुजी का योग प्रचार कार्यक्रम दिल्ली आर.के. पुरम आश्रम में चल रहा था। दादा गुरुदेव जी की प्रातःकालीन आरती–पूजा, गीता पाठ एवं प्रवचन के पश्चात् कुछ समय निकालकर त्रिकाल दर्शी गुरुदेव भगवान, श्री सिसोदिया जी की कोठी पर पधारे थे। वापसी पर जब आश्रम में लौटने के लिए चलने लगे तो सिसोदिया जी से बोले, लल्ला–मुझे भगवती के घर जाना है। और सब को चकित करते हुए परं ब्रह्म विश्वनाथ जी हमारी झोंपड़ी में आन विराजे। बोलिए, बड़ी सरकार की जय। मेरे पास शब्द नहीं, आगे क्या कहूँ? हाँ–तारण हार भगवान श्री कृष्ण के अचानक पधारने पर जो स्थिति बिदूरानी माता की हुई होगी अथवा मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम–लखन महाराज के पधारने पर जो स्थिति भीलनी माता की हुई होगी, वही स्थिति मेरी पूज्य माता श्री की थी। अस्तु।

मेरे विषय में यह था कि मुझे दीक्षा लेने का सौभाग्य तो प्राप्त नहीं हुआ लेकिन तात्विक बात यह है कि मेरी निष्ठा गुरु कृपा से अमर बेल की तरह विकसित होती गई। एक रात्रि को मैंने स्वप्न में एक अलौकिक दृश्य देखा कि आकाश से जोरदार जलते–जलते अंगारे बरस रहे हैं। मैं घबरा गया और अपनी रक्षा के लिए गुरु जी, गुरु जी ..... चिल्लाया। उस क्षण भव भयहारी प्रभु श्री रामलाल जी महाराज प्रकट हो गए। बोले, लल्ला–ये मन्त्र–जपो, सब ठीक हो जाएगा। यह झांकी अवर्णनीय थी। पश्चात् दादा जी अन्तर्ध्यान हो गए। मैंने वह मन्त्र बार–बार जपा। परिणामतः आकाश से अंगारे पड़ने बन्द हो गए। मैंने राहत की साँस ली। पश्चात् वह मन्त्र मैं सुबह सायं जप लिया करता था। फिर एक बार मैंने अन्तर्यामी गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज से सरस वाणी में मनुहार की कि मुझे गुरु मन्त्र देने की कृपा करें तो सुदूर दर्शी जी ने प्रत्युत्तर में ये आज्ञा की कि लल्ला तुम ..... इस मन्त्र का जाप किया करो और किसी दीक्षा वगैरह औपचारिकता की कोई आवश्यकता नहीं है। आश्चर्य? महान आश्चर्य कि ये तो वही मन्त्र है जो दादा गुरु ने दिया था और वो भी गहरी नींद में। ऐसे महान हैं हमारे अन्तर्यामी गुरुजी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह मेरी स्वप्न दीक्षा थी।

आइए, अब हम अपने मुख्य प्रसंग पर आते हैं। यह बात सन् 1988–89 की है। मेरी पत्नी को बच्चा होने वाला था। यह भाग्य की विडम्बना ही रही होगी कि मेरी भोली–भाली माँ त्रिनगर स्थित कारपोरेशन तालाब पर नए–नए बने अस्पताल (डिस्पेन्सरी) में डिलिवरी का रजिस्ट्रेशन करा आई। जब प्रसव काल आया तो हम श्रीमती जी को उक्त अस्पताल में ले गए। हम चकित रह गए कि वहाँ न साफ सफाई, न लाईट, कम्पाउंडर टाइप डाक्टर और तो और सिरेंज तक नहीं। (उस समय यूज एण्ड थ्रो सिरेन्ज नहीं होते थे) श्रीमती जी प्रसव पीड़ा की पराकाष्ठा से छटपटा रही थी। समय की नजाकत को देखते हुए मैंने शीघ्रता से नर्स द्वारा बताया सामान उपलब्ध किया। मगर श्रीमती की हालत खराब होती जा रही थी। देखते ही देखते सारा शरीर नीला पड़ गया। हम किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। करें तो क्या करें? चिकित्सक भी घबरा गए और कह उठे कि इस मरीज की हालत गम्भीर है और कहीं ले जाओ। अब और कहीं ले जाने का समय ही कहाँ बचा था। गुरुदेव जी की याद आना स्वाभाविक ही था।

नैय्या तेरे लाल की डोले बीच मझधार।

आकर गुरु वर बचा लो ये बड़ी दरकार।।

उधर मेरी माता श्री घबराई हुई शर्माई हुई सी अपनी पूर्वकृत स्वाभाविक भूल के पश्चाताप की अग्नि में जल रही थी। स्वयं को कुछ संभाल कर आर्त पुकार लगाई, गुरुदेव रक्षा करो, गुरुदेव बहू को बचा लो, गुरुदेव मेरी इज्जत रख लो, अगर बहू को कुछ हो गया तो मैं भी नहीं बचूँगी। गुरुदेव दयालु हो, दया करो, मेरी इज्जत रख दो, बचा लो ..... बचा लो, ... बचा लो पुकारते–पुकारते लयता में लीन हो गई। नेत्र बन्द हो गए। मैं माँ को कैसे समझाऊँ? गुरुदेव...? **आ गई लहर शिवा के मन में** –चमत्कार! चमत्कार हो गया। फट से सामान्य डिलिवरी हो गई। बच्चे के रोने की आवाज आई। मेरी माताश्री को पौत्र रत्न की प्राप्ति हुई। जच्चा–बच्चा दोनों आनन्दमय बताए गए। हमारी जान में जान आई। सच ही कहा है कि जीवन विपत्तियों की परिभाषा है। सिद्ध योगाधिपति की जय हो। मेरी माँ की इज्जत लोकोक्ति बन गई। आज से तीस साल पहले हुई गुरुदेव की कृपा आज भी ज्यों की त्यों मेरे हृदय में अंकित है। गुरुदेव जी के संरक्षण में उत्पन्न वह नवजात शिशु रवि उर्फ पारू के नाम से जाना जाता है। ऐसे परम हितकारी मंगल मूर्ति गुरु देव भगवान श्री चन्द्रमोहन महाराज के श्री चरणों में हमारा कोटि–कोटि दण्डवत प्रणाम।

जिसने तेरी याद को दिल में बसा लिया।

सोई हुई नसीब को उसने जगा लिया।।

।। ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

मन पर खान-पान-स्थान एवं व्यक्ति की वृत्ति का प्रभाव

-अन्तू राम यादव, प्रयागराज-211004

सर्वप्रथम योगयोगेश्वर आनन्द श्री दादा गुरुदेव एवं योगिराज अनन्त श्री सद्गुरुदेव महाराज के युगल कमलवत् चरणों में दास का कोटिशः नमन्। मनुष्य का अन्तिम उद्देश्य कैवल्य अथवा मोक्ष की प्राप्ति ही होना चाहिए। योग मार्ग पर चल कर इस लक्ष्य की प्राप्ति में मन की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। हम घर-परिवार की व्यवस्था देखते है, नौकरी-धन्धे की व्यवस्था देखते हैं परन्तु मन हमारा सुव्यवस्थित रहे, इसकी तरफ हम प्रायः उदासीन एवं लापरवाह रहते हैं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि मन ही हमारा मित्र है और मन ही हमारा शत्रु है। किन-किन आचरणों से मन मित्र और शत्रु की भूमिका निभाता है, इस पर गहनता से विचार करने की आवश्यकता है। खान-पान-स्थान एवं व्यक्ति की वृत्ति का मन पर क्या प्रभाव पड़ता है, प्रस्तुत लेख में यही समझने एवं समझाने का प्रयास किया जा रहा है।

हमारे आपके भाग्य विधाता श्री सद्गुरुदेव महाराज ने योग सिद्धान्त के प्रथम खण्ड के भाग-1 के सत्रहवें परिच्छेद में शास्त्रीय नियम का उल्लेख करते हुए स्पष्ट कहा है कि-''**यथा अन्नं तथा मनः**'' अर्थात् मनुष्य जिस प्रकार का अन्न सेवन करता है उसी प्रकार का उसका मन बन जाया करता है। इस तथ्य को स्पष्ट रूप से समझने के लिए तत्संबंधी कुछ दृष्टान्त इस प्रकार हैं-

(1) महाभारत के उद्योग पर्व में नकुल एवं सहदेव के मामा महाराजा शल्य का उपाख्यान मिलता है। महाराजा शल्य पाण्डवों की मदद करने के लिए आ रहे थे, किन्तु रास्ते में धोखा देकर दुर्योधन ने उनका इतना सत्कार किया कि वे अपना कर्तव्य भूल गये और वे अपनी भारी सेना के साथ पाण्डवों के बजाय कौरवों की तरफ से युद्ध करने लगे। मन में परिवर्तन का कारण केवल मात्र छल-कपट मन वाले दुर्योधन द्वारा प्रदत्त भोजन रहा।

(2) हमारे गुरुदेव यह कहा करते थे–एक बार श्री प्रभुजी (दादा गुरुदेव) ऋषिकेश के योग–साधन आश्रम में विराजमान थे। उस समय उनके पास एक जेल का दरोगा भेंट के निमित्त कुछ मिठाई लेकर आया। वह मिठाई श्री प्रभुजी ने रखवा तो ली परन्तु संकेत से उसे बाँटने व खाने से मना कर दिया। फिर भी किसी भाई ने प्रसाद समझकर उस मिठाई को बाँट दिया और सभी साधकों ने खा लिया। परिणाम यह निकला कि सभी के मन कलुषित हो गये और तीन–चार दिन के लिए योगाभ्यास से बिल्कुल खाली हो गये। जब सभी लोगों ने इसका कारण पूछा तो श्री प्रभुजी ने बताया कि उक्त दरोगा द्वारा लाया गया मिष्ठान नेक कमाई का नहीं था, अतः इसे तुम लोगों को नहीं खाना चाहिए था।

(3) एक बार ननकाना साहेब में एक नवाब गुरु नानक देव के लिए शुद्ध घी में बना हुआ सुमधुर भोजन लेकर आया। नानक देव ने वह भोजन तो ले लिया परन्तु खाया नहीं। उसी समय एक गरीब किसान सूखी रोटियाँ लेकर आया। नानकदेव ने तत्काल उसे खाना शुरु कर दिया। लोग बड़े हैरान हुए और उन्होंने निवेदन किया कि क्या कारण है आपने जौ की सूखी रोटियाँ तो स्वीकार कर लीं परन्तु सुमधुर भोजन को त्याग दिया? तब नानकदेव ने उत्तर दिया–किसान की सूखी रोटियाँ नेक कमाई की हैं और उसमें दूध है तथा घी से बना हुआ सुमधुर भोजन नेक कमाई का नहीं है और उसमें खून है। यह कह कर उन्होंने एक पूड़ी निचोड़ी तो उसमें से खून टपकने लगा और जब किसान की रोटी को निचोड़ा तो उसमें से दूध टपकने लगा। यह चमत्कार देख कर लोग आश्चर्यचकित रह गये। इसलिए साधक को सदा सात्विक और नेक कमाई का ही भोजन करना चाहिए।

(4) एक बार हमारे गुरुदेव भगवान सवाँई आश्रम पर विराजमान थे। सम्भवतः चैत्र रामनवमी के महोत्सव समाप्त होने के चार–पाँच रोज बाद की घटना है। एक हमारे वरिष्ठ गुरु भाई गुरुदेव की सेवा में लगे हुए थे। गुरुदेव ने रात के समय उन्हें आदेश दिया कि लल्ला ! एक फावड़ा और टोकरी ले आओ। तालाब की तरफ जो कदम्ब का विशाल वृक्ष है उसी के पास गुरुदेव ने खूब बड़ा सा गड्ढा खुदवाया और सेवा में रत हमारे गुरु भाई को आदेश दिया कि मेरे कमरे में जितने भी मिठाई के पैकेट पड़े हैं, टोकरी में भर–भर कर ले आओ और इस गड्ढे में डाल कर मिट्टी से ढक दो। वे अन्तर्यामी इस बात को जानते थे कि ये मिष्ठान नेक कमाई के नहीं हैं और इसके सेवन से साधकों की साधना में विक्षेप आ जायेगा और मन की वृत्ति बदल जायेगी। इसी उद्देश्य से उसे बँटवाया नहीं बल्कि जमीन में गड़वा दिया।

(5) एक हमारे गुरु भाई अपनी सेवा–काल में जब वे ऑफिस का निरीक्षण करने जाते थे तो वे भोजन सामग्री एवं आवश्यक बर्तन अपने साथ ले जाते थे और स्वयं भोजन बनाकर

खाते थे। वहाँ के अधिकारियों द्वारा दिये गए भोजन एवं भेंट स्वरूप किसी भी वस्तु को स्वीकार नहीं करते थे जबकि उनके सहयोगी अन्य लोग वहाँ के भोजन एवं भेंट इत्यादि की सभी वस्तुएँ सहर्ष ले लिया करते थे। एक बार एक अधिकारी के बड़े आग्रह करने पर सुबह नाश्ते में हमारे गुरु भाई ने उस अधिकारी द्वारा दिये गए दूध का सेवन कर लिया। दो दिन के बाद उनके मन में अचानक परिवर्तन आ गया। उन्होंने सोचा कि हमारे सहयोगी निरीक्षण के दौरान काफी धन बचा लेते हैं और रुपया बचाने को कौन कहे हमारा तो अपनी जेब से भी खर्च हो जाता है। अन्य सहयोगियों की भाँति आचरण का भाव उनके मन में भी आ गया जबकि वे अत्यन्त ईमानदार और सात्विक विचार के थे। तुरन्त उन्होंने गुरुदेव भगवान का स्मरण किया और तत्काल इस कुत्सित विचार के कारण का समाधान मिल गया कि उस अधिकारी द्वारा प्रदत्त दूध ही उनके मन की वृत्ति को बदलने का कारण है फिर उन्होंने दूध लेना बन्द कर दिया।

इस प्रकार हम देखते है कि खान-पान से मन किस प्रकार प्रभावित हुआ करता है। हमारे शास्त्रों में भी **''हित् भुक, मित् भुक, ऋत् भुक''** का उल्लेख मिलता है जिसमें ऋत भुक यानी नेक कमाई के भोजन पर विशेष ध्यान देने की बात कही गई है। इस संबंध में एक महत्वपूर्ण तथ्य की जानकारी शायद हमें और आपको नहीं होगी कि खान-पान के अतिरिक्त स्थान एवं भोजन पकाने वाले की वृत्ति का भी हमारे तन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। निम्नांकित एक सच्ची घटना से इसका स्पष्टीकरण हो जायेगा–

हिन्दुस्तान पर अंग्रेजों का शासन था। हमारे देश के बहुत से लोग अपने देश की आजादी के लिए संघर्ष कर रहे थे। पंजाब केशरी के नाम से मशहूर लाला लाजपतराय भी आजादी की लड़ाई में सक्रिय भाग ले रहे थे। अंग्रेजों को उनकी तलाश थी। अन्ततोगत्वा वे अंग्रेजों की गिरफ्त में आ ही गये। उन्हें जेल में डाल दिया गया। चूँकि वे बड़े घराने के थे अत: उन्हें जेल में भी घर जैसी सुविधा प्रदान करने की दृष्टि से एक अलग कमरे में रखा गया। एक रात उनके जोर से चीखने की आवाज आई। जेल के वार्डेन एवं अन्य प्रहरी दौड़कर उनके पास आये और चीखने का उनसे कारण पूछा। लाला लाजपतराय ने बताया कि मैंने एक भयंकर स्वप्न देखा है उस स्वप्न को विस्तार से उन्होंने जेल के अधिकारियों से बताया। स्वप्न की बात सुनकर जेल के अधिकारी आश्चर्यचकित रह गये कि स्वप्न की पूरी की पूरी घटना ज्यों की त्यों जेल के रिकार्ड में दर्ज है। तब अधिकारियों ने उनसे बताया कि इसी कक्ष में एक कत्ल का मुजरिम बन्द था। कुछ दिन पहले ही उसको फाँसी की सजा हो गई। आपने स्वप्न में जो देखा है, यह उसके जीवन का पूरा वृतान्त है। कहने का आशय यह है कि उस

स्थान ने उनके मन को ऐसा प्रभावित किया कि वे विक्षिप्त से हो गये। उसके बाद एक अन्य कक्ष को साफ–सुथरा करके उन्हें उस कक्ष में स्थानान्तरित कर दिया गया और एक रसोइये के माध्यम से अलग भोजन की भी व्यवस्था कर दी गई। वह रसोइया खूब साफ–सफाई से नहा–धो कर चौका को लीप–पोतकर पवित्रता के साथ भोजन बनाकर उन्हें खिलाता था। कुछ दिन के बाद लाला लाजपतराय ने अपने पिता को पत्र लिखा और उन्हें बताया कि पिताजी ! मेरी दिनचर्या तो घर जैसी ही है। मेरा आचरण बिल्कुल शुद्ध है और भोजन भी बड़ी पवित्रता के साथ बनाया हुआ मिलता है फिर इस समय मुझे काम–वासना बहुत सता रही है, इसका कारण मेरी समझ में नहीं आ रहा है। उनके पिताजी ने खूब फटकार लगाते हुए पत्र का जवाब दिया कि वहाँ तुम्हारी संगत गलत होगी अथवा तुम गलत साहित्य पढ़ते होगे अथवा अनावश्यक चिन्तन करते होगे। फिर भी मैं स्वयं आकर इसका पता लगाऊँगा। वे आये और जेल के अधिकारियों से काफी छानबीन किये परन्तु उन्हें कुछ अन्यथा देखने–सुनने को नहीं मिला। अन्ततोगत्वा लाला लाजपतराय के पिता ने जेल के अधिकारियों से उस रसोइये के बारे में पूछा जो भोजन बनाकर लाला लाजपतराय को खिलाता था। जेल के अधिकारियों ने बताया कि वह बहुत कामी व्यक्ति है। इसने कई बलात्कार जैसे जघन्य अपराध किये हैं। इसी कारण यह आजीवन कारावास भुगत रहा है। तब उन्हें इस तथ्य की जानकारी हुई कि इस कामी द्वारा तैयार भोजन के ही कारण लाला लाजपतराय के मन की वृत्ति बदल गई और वह काम–वासना के वशीभूत हो गये। उस रसोइये को हटाने के बाद उनकी मनःस्थिति पूर्ववत् हो गयी। कहने का आशय यह है कि केवल भोजन ही नहीं बल्कि भोजन बनाने वाले के भाव का भी मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए साधना बढ़ जाने पर 'वैराग्य' की स्थिति में साधक स्वयंपाकी हो जाता है वह अपने परिवार अथवा किसी अन्य व्यक्ति के हाथ का बनाया भोजन भी नहीं करता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मन पर भोजन बनाने वाले की वृत्ति एवं भोजन के साथ–साथ मन पर स्थान का प्रभाव पड़ता है। इसी कारण ध्यान–कक्ष को अलग एवं एकान्त में बनाने की बात कही गई है। ध्यान–कक्ष में सार्वजनिक रूप से लोगों का आवागमन नहीं होना चाहिए। जिस आसन पर हम ध्यान करते हैं उसे दूसरा कोई स्पर्श तक न करे। जिस बिस्तर पर हम सोते हैं उस पर भी कोई अन्य व्यक्ति न सोवे अथवा हम भी किसी दूसरे के बिस्तर पर शयन न करें। इससे भी मन में विक्षेप पैदा हो जाता है। यद्यपि हमारे गुरुदेव भगवान गुणातीत है फिर भी हमें, आपको नसीहत देने के उद्देश्य से वे जहाँ कहीं भी योग–प्रचार में जाते थे, अपना बिस्तर अपने साथ ले जाते थे अथवा आवश्यकता पड़ने पर

बिल्कुल नये बिस्तर का ही प्रयोग करते थे।

व्यक्ति की कलुषित एवं गन्दी वृत्ति के कारण स्थान की आध्यात्मिक शक्ति भी प्रभावित होती है। गुरु पूर्णिमा और राम नवमी के पर्व पर श्री सिद्धगुफा सँवाई आश्रम पर इकट्ठी भीड़ एक बहुत बड़े मेला का रूप ले लेती है। इसमें सिद्ध–योग परिवार से सम्बन्धित गुरु–भाई–बहनों के अलावा अन्य बाहरी लोग भी आ जाया करते हैं जिनका खान–पान एवं आचरण शुद्ध नहीं रहता। उत्सुकतावश ये लोग भी गुफा के अन्दर चले जाया करते थे। गुफा की पवित्रता और उसकी आध्यात्मिक शक्ति बनी रहे, इस उद्देश्य से गुरुदेव भगवान गुफा के अन्दर ताला बन्द करा दिया करते थे। आश्रम की व्यवस्था देखने वाले आदरणीय भाइयों को आज भी गुरुदेव भगवान के दिये गये उपरोक्त निर्देश का पालन करना चाहिए।

योग मार्ग पर चलने वाले प्रत्येक साधक को उपरोक्त वर्णित सभी नियमों एवं सिद्धान्तों का दृढ़ संकल्प के साथ पालन करना चाहिए तभी हम अपने अन्तिम लक्ष्य (कैवल्य) की प्राप्ति का स्वप्न साकार करने में सफल हो सकते हैं। लेख में अपनी त्रुटियों के लिए क्षमा–याचना करते हुए निम्न शब्दों के साथ मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ–

''खुदी को कर बुलन्द इतना, कि हर तकदीर के पहले।
खुदा बन्दे से खुद पूछे, बता तेरी रजा क्या है।।''

सादर जय गुरुदेव !

शोक संवेदना

बड़े दुःख का विषय है कि हमारे पुराने गुरुभाई श्याम सुन्दर जिन्दल फिरोजाबाद वालों का 17 दिसम्बर 2018 प्रातः 5 बजे देहावसान हो गया है। वे पुराने गुरुभाई थे और गुरुदेव के प्रिय बच्चों में से एक थे। श्री प्रभुजी उन्हें अपने चरणों में स्थान दें और दुःखी परिवार को दुःख सहने की क्षमता प्रदान करें।

शोकाकुल साधकगण

श्री सिद्धगुफा सँवाई

एत्मादपुर, आगरा

मन की एकाग्रता, योग की वर्णाक्षरी है

–दिनेश चन्द्र शर्मा, मोबाइल नं० 9412671314

''जैसा खाये अन्न वैसा होय मन'' यह कहावत समाज में बहुत प्रचलित है। शास्त्रों का भी सिद्धान्त है–''यथा अन्नं तथा मनः''। मनुष्य जिस प्रकार का अन्न सेवन करता है, उसका मन भी उसी प्रकार का बन जाता है। योग शास्त्र में भी इस बात पर बहुत बल दिया गया है कि मन की एकाग्रता चाहने वाले योगी को सदा पवित्र–सात्विक अन्न का ही सेवन करना चाहिए।

''आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः''। शुद्ध–सात्विक आहार के सेवन से सतोगुण की वृद्धि होती है और सत्व शुद्धि होती है। सत्व शुद्धि हो जाने पर शुद्ध स्मृति होना सुनिश्चित है। शास्त्रों में अनेक स्थानों पर उल्लेख है कि अपने मन को वश में करने के लिए पवित्र, शुद्ध, सात्विक व संस्कारित अन्न का सेवन करना चाहिए।

अन्न का संस्कारित होना भी आवश्यक है। अनेक परिवारों में यह प्रथा–परम्परा है कि भोजन आदि बनाने के बाद अपने ईष्टदेव–या गुरुदेव को भोग लगाते है और फिर प्रसाद रूप में उस अन्न–भोजन को ग्रहण करते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है (अध्याय ३ श्लोक १३)

यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः
मुन्जते ते त्वघं पापा मे पचन्त्यात्म कारणात्।

भोजन को यज्ञ शेष (Food taken after Performance of Yagya) के रूप में लेने वाले मनुष्य सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाते हैं। [They are released from all kinds of sins because they eat food which is offered first to Yagya (Sacrifice). And who prepare food for personal sense enjoyment, verily eat sin].

भोजन आदि तैयार हो जाने पर उसको यज्ञशेष बनाने के लिए यदि घर में यज्ञ की प्रथा है तो उसकी अग्नि में आहूतियाँ डालें अन्यथा अपने ईष्टदेव–गुरुदेव को अर्पित करके भोग लगाकर उनका प्रसाद मानकर सेवन करें। साधक को सदैव सात्विक भोजन करना चाहिए।

मन की एकाग्रता के लिए लोगों को आहार–विहार पर संयम रखना चाहिए। योग साधक को न तो बहुत अधिक मात्रा में भोजन करना चाहिए और न ही उसको निराहार रहना चाहिए। गीता में अध्याय ६ श्लोक १६ व १७ में स्पष्ट कहा है–

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्त मनश्नतः
न चाति स्वप्न शीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।

योग न तो अधिक खाने वाले का और न बिल्कुल न खाने वाले का तथा न अधिक सोने वाले का और न बिल्कुल न सोने वाले का सिद्ध होता है। [There is no possibility of one's

becoming Yogi, if one eats too much or eats too little, sleeps too much or does not sleep enough.]

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु
युक्त स्वप्नान बोधस्य योगी भवति दु:ख हा।।

दु:खों का नाश करने वाला योग तो यथा योग्य आहार–विहार करने वाले का, कर्मों में यथा योग्य चेष्टा करने वाले का तथा यथा योग्य सोने और जागने वाले का सिद्ध होता है। जिसका आहार विहार युक्त है, जिसका सोना जागना युक्त है जिसकी हर चेष्टा नियमित होती है और नियमानुवर्तिता के साथ नियत समय पर नियत कार्य करता है। [Regulate habits of eating, sleeping, recreation, regulate your work, speech, sleep and wakefulness and all other bodily activities.]

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के सत्रहवें अध्याय में श्लोक ८, ९, १० में सतगुण, रजोगुण और तमोगुण प्रधान भोजन के बारे में बताया है। सात्विक आहारी के बारे में बताया है–

आयु सत्व बलारोग्य सुख प्रीति विवर्धना:
रस्या: स्निग्धा, स्थिरा ह्रदया आहारा सात्विक प्रिया।

आयु, सत्वगुण, बल, आरोग्य, सुख और प्रसन्नता बढ़ाने वाले, स्थिर रहने वाले, ह्रदय को शक्ति देने वाले रसयुक्त तथा चिकने ऐसे आहार अर्थात् भोजन पदार्थ सात्विक मनुष्य को प्रिय होते है। [Satvik Foods increase the durability of life, purify one's existance and give strength, health, happiness and satisfaction and pleasing to heart.]

मन की एकाग्रता चाहने वाले साधक को सात्विक भोजन के साथ–साथ नित्य योगिक व्यायाम–आसन व प्राणायाम करना भी आवश्यक है। वेदों में मन के शिव संकल्प वाला होने की प्रार्थना की गई है–**''तन्नो मन: शिव संकल्पमस्तु''** हमारे मन में शुभ संकल्पों का वास हो, जिससे वह हमारे उत्थान का कारण बने। बन्धन और मुक्ति का कारण भी मन को बताया गया है। इसलिए मन की शक्ति का संयम और मन की एकाग्रता को बहुत आवश्यक माना गया है। मन में सदैव सकारात्मक और रचनात्मक विचार आने चाहिए।

भगवान पतंजलि ने **''योग दर्शन''** में अष्टांग योग का वर्णन किया है। सभी आठ अंग मन पर नियन्त्रण के लिए अचूक साधन हैं। योग के अंगों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि) का अभ्यास करने से अशुद्धि और अविद्या का नाश होता है और मानस शान्ति व आत्मतेज की अभिवृद्धि होती चली जाती है। योग शास्त्र के नियमों व उपायों पर ध्यान देने से मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है।

गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज साधकों से प्राय: कहा करते थे कि ''मन की एकाग्रता योग की वर्णाक्षरी है। मन को अन्तर्मुखी करो''। मन के पास अपार शक्ति और अद्भुत सामर्थ्य है। जहाँ भी मन एकाग्र होगा वहाँ उत्साहजनक परिणाम मिलना स्वाभाविक है।

चित्त की प्रसन्नता क्यों और कैसे?

—आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा एम. ए. एम. एड.

बाहर दिखाई देने वाला संसार और चित्त में प्रतिबिम्बित होने वाला पूर्व–पूर्व जन्मों के संस्कारों का पुंज त्रिगुणात्मक चित्त के धर्म के अनुसार दृष्टिगोचर होता है। यदि ऐसा न होता तो प्रत्येक व्यक्ति को संसार एक जैसा ही दिखाई पड़ता। पर व्यवहार दशा में हम देखते हैं कि कामी को सर्वत्र काममय जगत और ज्ञानी को सर्वत्र ज्ञान रूप जगत तथा चोर को सभी चोर और संत को सभी सन्त आभासित होते हैं। 'जैसा भाव वैसा भव' अर्थात् संसार। 'जिनकी रही भावना जैसी, तिन देखी प्रभु मूरति तैसी' का सिद्धान्त हमारे जीवन के सारे क्रिया–कलापों को संचालित करता हुआ दिखाई पड़ता है। हमारे शास्त्रकारों ने इसीलिए कहा है कि—

यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी।

अर्थात् जिसकी जैसी भावना होती है उसे वैसा ही फल मिलता है। सत, रज, तम गुणों के संयोग से संसार के सभी पदार्थों का निर्माण हुआ है। तमोगुण प्रधान पदार्थों में भारीपन निष्क्रियता होती है। उनमें चेतना ठीक उसी प्रकार से प्रतिबिम्बित नहीं होती जिस प्रकार मिट्टी के ढेले में। सूर्य की किरणें उस प्रकार प्रतिबिम्बित नहीं हो पाती जिस प्रकार एक दर्पण में। रजोगुण प्रधान सृष्टि–प्रपंच में क्रियाशीलता और चंचलता इस हद तक होती है कि उसमें भी चेतना का प्रतिबिम्ब उसी प्रकार से नहीं पड़ पाता जिस प्रकार हिलोरे लेते हुए तालाब में सूर्य–रश्मियाँ तल स्पर्शी नहीं प्रतीत होतीं। सतोगुण प्रधान पदार्थों में ही ज्ञान–दीप्ति और चेतना स्फुरित होती है। चित्त की प्रसन्नता सतोगुण के आविर्भाव–काल का लक्षण है। सतोगुण का उदय होने पर मल और विक्षेपों का उसी प्रकार विलय हो जाता है, जिस प्रकार सूर्य के उदित होते ही अन्धकार का। सतोगुण से संयुक्त अवस्था वाला चित्त धारणा ध्यान और समाधि की योग्यता वाला होता है। योग दर्शनकार भगवान पतंजलि ने जीवों को पाच कोटियों में बाँटा है—मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र, निरुद्ध चित्त वाले। इनमें मूढ़, क्षिप्त तथा विक्षिप्त चित्त वाले प्राणी तम तथा रजोगुण प्रधान होने के कारण अध्यात्म मार्ग के पथिक नहीं बन पाते। इन तीनों प्रकार के प्राणियों के कर्माशय में तमोगुण तथा रजोगुण की प्रधानता के कारण निद्रा आलस्य मूढ़ता, संशय, विपर्यय, श्रद्धा की कमी तथा अनास्था इतनी तीव्र होती है कि इस सृष्टि–प्रपंच में अस्मिता, अभिनिवेष, राग–द्वेष आदि पाशों में ऐसा जकड़ा रहता है कि उसे अपने दुःखों में ही उसी प्रकार आनन्द आता है जिस प्रकार शूकर को विष्टा भक्षण में।

यदि उसे स्वादिष्ट और सुन्दर पदार्थ दिये जायें तो वे भी उसे अप्रिय लगते हैं। कुत्ते को हड्डी चूसने में बड़ा सुख मिलता है और उसे छोड़ना नहीं चाहता। इसी प्रकार जीव विषयों में आनन्द खोजता है।

जब चित्त की प्रसन्नता प्रारम्भ होती है तो उसके समकाल ही दो और कार्य होते हैं–पहला क्लिष्ट वृत्तियों का तिरोभाव और श्रद्धा का उदय। श्रद्धा के उदित होने से व्यवसाथात्मिका बुद्धि दूर होकर एक ध्येय का निश्चय होने लगता है जिससे साधक सत्य का वरण करने की ओर निरन्तर अग्रसर होता है। योगेश्वर भगवान कृष्ण ने श्रीमद्‌भगवत् गीता में इसी रहस्य का उद्‌घाटन करते हुए कहा है–

व्यवसाथात्मिकः बुद्धि, समाधौ न विधीयते।

अर्थात् जिन लोगों की बुद्धि में रजोगुण और तमोगुण जनित अनेक तर्क–वितर्क और संकल्प–विकल्प रहते हैं, उनकी बुद्धि समाधि में प्रवृत्त नहीं हो सकती। तथा ऐसे पुरुषों में एक तत्व के अभ्यास की निष्ठा भी नहीं हो सकती क्योंकि सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुसार होती है। तमोगुण प्रधान अन्तःकरण में निद्रा, आलस्य, अभिमान तथा कलहकारी वस्तुओं के प्रति निष्ठा होती है। रजोगुण प्रधान अन्तःकरण में भोग और ऐश्वर्य के प्रति आसक्ति बढ़ती है तथा सत्व प्रधान अन्तःकरण में दैवीय भाव तथा उच्च सत्ता के प्रति समर्पण और उसकी महत्त्व स्वीकृति होती है। श्रीमद्‌भगवद् गीता के सत्रहवें अध्याय के तीसरे श्लोक में इस बात को ही स्पष्ट किया गया है–

सत्वानुरुपा सर्वस्य, श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयो अयं पुरुष, यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।

सतोगुण से मन की प्रसन्नता बढ़ती है। उससे एकाग्रता आती है। मन की एकाग्रता से ही योग की वर्णाक्षरी का प्रारम्भ होता है। एकाग्रता से चित्त के अन्दर अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, प्राणिमात्र पर दया, सन्तोष, कोमलता, परोपकार भावना, शास्त्र मर्यादा में निष्ठा आदि दैवीय गुण आने लगते हैं। जिनसे योग का जिज्ञासु यम–नियम की साधना में दृढ़ता से प्रवेश करता जाता है।

चित्त की प्रसन्नता का फलः–

भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने मन की प्रसन्नता का फल बताते हुए कहा है–

प्रसादे सर्व दुःखानाम् हानिरस्योपजायते।
प्रसन्न चेतसो ह्याशु, बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।

अर्थात् आत्म–संयम के द्वारा जब मनुष्य के तमोगुण और रजोगुण दब जाते हैं और सतोगुण का विकास होता है तब उसके अन्तःकरण में प्रकाश और आनन्द की तरंगें हिलोरे लेने लगती हैं जिससे वह विषम से विषम परिस्थिति में भी अपना धैर्य नहीं छोड़ता, घबराता नहीं और विषम से विषम स्थिति में भी अपनी दीवानगी और मस्ती में अपूर्व शान्ति का आनन्द लेता है। उसके सामने संसार का चक्रवर्ती सम्राट भी तुच्छ है। वह चाहे महलों में रहे चाहे झोपड़ी में रहे उसकी मस्ती में कोई फर्क नहीं आता। इसी मन की खुशी में दीवाने बने हुए स्वामी रामतीर्थ अपने को संसार का सबसे बड़ा शहंशाह कहा करते थे। राष्ट्रकवि स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त ने प्रवासी श्री राम के चरित्र में मन की प्रसन्नता को उनके जीवन की सुख शान्ति का मूल माना है। जो राम रथ से उतर कर नीचे कभी चरण नहीं रखते थे, जिन्हें प्रातःकाल बन्दीगण, चारण तथा द्विजगण स्तुतियों की तुमुल ध्वनि से जगाते थे, जो कोमल परिधान का सहारा लेकर सोते थे, वे कंटकाकीर्ण उबड़–खाबड़ पथरीली भूमि में बेघरबार मारे–मारे फिरें। इससे अधिक उनके लिये कष्टकर और क्या हो सकता है? किन्तु नहीं। 'मन प्रसाद चाहिये तो फिर क्या कुटीर और क्या प्रासाद'। इसीलिए भगवान कृष्ण ने कहा कि मनः प्रसाद से सभी दुखों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न चित्त वाले मनुष्य की बुद्धि भी अच्छी प्रकार निश्चल हो जाती है जिससे उसके अन्दर आस्तिक भाव आ जाता है। आस्तिक भाव से सुख और शक्ति प्राप्त होती है। सतगुण ही सुख, ज्ञान और वैराग्य का जन्मदाता है। श्रीमद्भगवत् गीता के चौदहवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र ने कहा है कि–

तत्र सत्वं निर्मलत्वा– त्प्रकाशकमनामयम्।
सुख सङ्गेन बध्नाति, ज्ञानसङ्गेन चानघ।।

अर्थात् सतोगुण निर्मल होने से प्रकाश करने वाला, दोष दूर करने वाला, सुख और ज्ञान से संयुक्त करने वाला है जबकि रजोगुण उसे कर्मों के फल की आसक्ति से जीवात्मा को बाँधता है। तमोगुण जीवात्मा को प्रमाद, निद्रा और आलस्य में बाँधता है तथा ज्ञान को आच्छादित करता है।

सत्त्वं सुखे संजयति, रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः, प्रमादे संजयत्युत।।

प्रसन्न चित्त रहने वाला व्यक्ति पहाड़ से कष्टों को हँसते–हँसते झेल जाता है और उसकी सेहत पर कोई बुरा असर नहीं होता जबकि एक मनहूस तबियत का आदमी अपना जीवन धुंआ देती हुई लकड़ी की तरह जलाता है। किसी शायर ने ठीक ही कहा है–

जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है।
मुर्दा दिल क्या खाक जिया करते हैं।।

मनहूस तबियत के लोग विपत्ति की संभावना करके ही ऐसी हायतौबा करने लगते हैं कि उनके घर वाले भी चाहते हैं कि उनसे जल्दी निजात मिले। प्रसन्न चित्त वाले अपने दुःखों की पूंजी को खुद हँस कर सुख में बदल देते हैं। सत्त्व-गुण सम्पन्न प्रसन्न चित्त वाले पुरुष विघ्न-बाधाओं के आने पर बिल्कुल नहीं घबराते। वे वज्र से भी कठोर और फूल से भी सुकुमार हो सकते हैं।

प्रसन्न चित्त होने का दूसरा लाभ एक और है। प्रसन्न चित्त व्यक्ति की नाड़ियों में रस-रक्त का संचार उचित मात्रा में होता है जिससे उसके शरीर में सभी तत्व संतुलित रहते हैं और वह स्वस्थ बना रहता है। प्रसन्नचित्त व्यक्ति के पाचन-संस्थान में सभी रस उचित मात्रा में निकल कर भोजन को पचाते हैं। ऐसे व्यक्ति को मन्दाग्नि, अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, अल्सर, पेचिश, रक्त प्रेशर, ह्रदय दौर्बल्य, पीठ-दर्द, सिर-दर्द, उन्माद जैसे स्नायुविक रोग नहीं होते। चित्त को प्रसन्न रखने के रहस्य को जान कर व्यक्ति अनेक शारीरिक और मानसिक रोगों से मुक्त रह सकता है। उसके शरीर में रोग-प्रतिरोधक क्षमता की निरन्तर वृद्धि होती रहती है जिसके परिणामस्वरूप महामारी, हैजा, प्लेग आदि संसर्गज और कीटाणुजन्य रोगों का उसके शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। प्रसन्नचित्त वाले व्यक्ति के मन में कार्य करने का अपार उत्साह रहता है जिससे वह किसी भी कार्य को अपने हाथ में लेकर उसको पूर्णता तक पहुँचाकर ही सन्तोष की सांस लेता है। ऐसे व्यक्ति की आर्थिक दशा कभी शोचनीय नहीं रह सकती। अगर वह व्यापारी है तो ग्राहकों को आकर्षण केन्द्र बनेगा। यदि डॉक्टर है तो मरीज उस पर खिंचकर आयेंगे। यदि प्रसन्नचित्त अध्यापक है तो वह उद्दण्ड से उद्दण्ड विद्यार्थियों का भी श्रद्धाभाजन बन जायेगा। उसके सामने अनुशासनहीनता जैसी कोई समस्या बन कर नहीं रह सकती। प्रायः देखने में आता है कि जो प्रशासक प्रसन्नचित्त होते हैं, उनके विरोधी और आलोचक उनके सम्मुख नतमस्तक हो जाते हैं। दूसरी ओर मनहूस और गमगीन स्वभाव वाले व्यक्ति हर समय अपनी मुहर्रमी सूरत से हर व्यक्ति से बात-बात में झगड़ा-फिसाद करते रहते हैं। और बात-बात में अपना आक्रोश और असन्तोष वातावरण में फैला कर रंग में भंग डाल देते हैं। प्रत्येक अवसर पर ऐसे लोगों की उपस्थिति कबाब में हड्डी बन जाती है। ऐसे व्यक्ति जीवन में मान-प्रतिष्ठा के स्थान पर अपमान-विद्वेष और आलोचना अर्जित करते हैं।

मन की प्रसन्नता से इन्द्रियों में चेतनता आती है और स्मृति तथा बोध-शक्ति बढ़ती है। बहुत शीघ्र किसी बात का निष्कर्ष निकाल देने की क्षमता तथा उसे निर्णय की योग्यता प्रसन्न चित्त व्यक्ति में प्रायः आ ही जाती है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा, विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत।। (अ० १४/श्लोक ११)

जब जीवात्मा में सत्व गुण की वृद्धि होती है, उस समय कदाचित शरीर छूट जाये तो उस जीवात्मा की ऊर्ध्वम् गच्छन्ति सत्त्वस्था:, मध्ये तिष्ठत्ति राजसा: अर्थात् सत्त्व प्रधान प्राणियों की ऊर्ध्व लोकों (सत्यामह, जन: तप:) में गति होती है तथा रजोगुण प्रधान व्यक्ति भू भुव: स्व: आदि लोकों को जाते हैं।

'यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु, प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानन्लान्प्रतिपद्यते।।' (१४/१४)

सतोगुण युक्त रहने पर मृत्यु हो जाने के बाद दिव्य लोगों का भोग कर जब जीवात्मा पुन: जन्म ग्रहण करता है तो उसमें ज्ञान का उदय हो जाता है। 'सत्व त् संजायते ज्ञानम्।' ज्ञान उत्पन्न होने से वह योग की भूमिकाओं में प्रवेश करता है और उसके कर्म सात्विक होते हैं जिससे उसका क्लेशमूल कर्माशय नष्ट होता है। क्लेश कर्मों से उत्पन्न उसकी सन्तान अस्मिता, अविद्या, अभिनिवेष, राग, द्वेष का नाश होता है। मूल का नाश होने पर संसार और कर्म रूपी वृक्ष स्वत: छिन्न-भिन्न हो जाता है। उस समय योगाभ्यासी साधक कहता है-'भव सागर सब सूख गयी है। आस नहीं मोहि तरनन की। जब बीज नहीं तब वृक्ष नहीं और वृक्ष के फलों का तो प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता।

चित्त प्रसन्न करने के उपाय:-

हमारा चित्त गुणों का परिणाम है। गुण-प्रकृति के अधीन है। प्रकृति के पंचभूतों और चेतना के संयोग तथा कर्माशय के संयोग से स्थूल और सूक्ष्म शरीर का निर्माण होता है। अन्न और औषधियों से शरीर तथा मन का निर्माण होता है। 'जैसा खाओ अन्न, वैसा बने मन'। शास्त्रकारों का मत है कि-

'आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धि:, सत्त्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृति:।'

अर्थात् आहार शुद्ध होने से मन शुद्ध होता है और मन शुद्ध होने पर बुद्धि की धारणा शक्ति बढ़ती है। शुद्ध आहार का निश्चय देश, काल, पात्र और अधिष्ठान के आधार पर करना चाहिये। भोजन को शुद्ध स्थान में, शुद्ध पात्रों में, शुद्ध सात्विक भाव के व्यक्ति द्वारा बनाया जाना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक भोजन को कराने वाले की अच्छी मनोदशा तथा करने के स्थान की स्वच्छता एवं सुन्दरता है। भोजन बनाने वाला विनम्र, आस्तिक तथा मधुर-भाषी तथा शुद्धताप्रिय होगा तो उसके भावों का संक्रमण भोजन के

माध्यम से भोजन करने वाले पर अवश्य पड़ेगा। भोजन करते समय भोजन करने वाले की मनोदशा भी अच्छी होनी चाहिए, तभी यकृत और प्लीहा से पाचक रस ठीक तरह से निकल कर भोजन में मिलेंगे और शरीर में रस–रक्त बनेगा। क्रोध, आवेग, भय, चिन्ता और दुख में भोजन करने से उदर के पाचक रस भोजन में नहीं मिल पाते जिससे भोजन का रस परिपाक ठीक नहीं हो पाता। परिणाम स्वरूप गैस बन जाने से प्राण–वायु गड़बड़ हो जाती है। प्राण और मन का चोली–दामन का साथ है।

'यत्र प्राणोपलीयते, तंत्र मनोऽपिलीयते।'

अर्थात् जहाँ प्राण लीन होते हैं वहीं मन तथा जहाँ मन लीन होता है वहीं प्राण लीन होते हैं। प्राणों के विक्षुब्ध होने का मन पर प्रभाव पड़ता है। श्वास–प्रश्वास गति के ठीक न होने पर चित्त में उद्वेग और चंचलता का आना स्वाभाविक है। ऐसी दशा में चित्त की प्रसन्नता कैसे रह सकती है। मेरे एक मित्र के यहाँ खाना बनाने वाली एक महिला थी। वह खाना बनाने में बहुत प्रवीण थी किन्तु उसमे चोरी करने, झूठ बोलने और कटु बोलने की बुरी आदतें थीं।

यदि घर में कोई मेहमान आ जायें तो उसे बड़ा कष्ट होता था। क्योंकि उनके लिये खाना बनाने का अतिरिक्त भार उस पर पड़ता, उसके हाथ का भोजन करने का यह परिणाम था कि मेरे मित्र के परिवार के लोगों का चित्त विक्षिप्त रहता था और हर समय मनोमालिन्य का वातावरण घर में डेरा डाले रहने लगा। उस महिला के नौकरी छोड़ कर चले जाने के बाद घर का वातावरण एकदम बदल गया।

उचित देश और काल का विचार करना भी आवश्यक है, भोजन और भजन एकान्त में होने चाहिए क्योंकि देखने वालों की भावनायें दृष्टि द्वारा भोजन में संक्रमित हो जाती हैं, इसलिये भोजन पर अच्छी दृष्टि पड़ने से भोजन में अच्छे गुण समाविष्ट हो जाते हैं और बुरी दृष्टि पड़ने पर बुरे भाव। अच्छे भावों के संक्रमण हेतु गुरु पूज्य अथवा देव को समर्पित कर प्रसाद रूप से भोजन ग्रहण करना चित्त में सत्त्वोद्रेक का कारण होता है। ब्रह्मार्पणम् का रहस्य बहुत अचूक नुस्खा है। स्वानुभूत एक सत्य घटना है। अजमेर के प्रवास काल में गुरुदेव की अनन्य कृपा से मुझे कई सिद्ध महात्माओं के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तीर्थराज पुष्कर में परमहंस रूप में रमण करने वाले एक वीतराग महात्मा थे जिनका नियम था कि चौबीस घण्टे में केवल एक बार ही सूखी दो चपातियों का भोजन करते थे। प्रातःकाल सबसे पहले जो कोई उन्हें दो रोटियाँ दे जाता तो वे आनन्दित होकर उनको प्रेम से पा लेते। यदि कदाचित् किसी दिन कोई नहीं लाया तो कोई बात नहीं। कामना से लाने वाले का वह भोजन नहीं करते थे। एकान्त में एक–दो बार उन्होंने मुझ से कहा था कि जो लोग पुत्र या धन की कामना या

अन्य किसी कामना से भोजन लाते हैं उनका भोजन पेट में पत्थर जैसा लगता है और माया अपना नाटक दिखाने लगती है। मेरे मन में एक दिन तीव्र इच्छा हुई कि मैं भी एक दिन ऐसे सिद्ध पुरुष को भोजन समर्पित कर प्रसाद रूप में अन्न खाकर अपने अन्न और शरीर को क्यों न पवित्र करूँ। प्रातःकाल शुद्धता से भोजन बना कर दो अन्य विद्वान मित्रों के साथ मैं सपरिवार उन महात्मा की ओर चल पड़ा। वहाँ तक पहुँचने में मुझे कुछ विलम्ब हो गया था, अतः मुझे आशा कम थी कि अब तक वे अपना भोजन ले होंगे और मेरा भोजन ग्रहण करने की कृपा करेंगे, किन्तु बात आशा के विपरीत हुई, सिद्ध पुरुष अन्तःदृष्टि सम्पन्न होते हैं, जैसे ही हम लोग वहाँ पहुँचे वैसे ही उन महात्मा ने हाथ हिलाकर हमें बुलाया और हम लोगों से भोजन माँगा। दूसरे कई लोग बहुत पहले से भोजन लिये बैठे थे और उनसे भोजन करने का आग्रह कर रहे थे, किन्तु अधिक समय होने पर भी उन्होंने किसी का भोजन क्यों नहीं ग्रहण किया, यह अन्य वहाँ बैठे लोगों के लिये एक पहेली थी, दो चपातियाँ और कुछ दाल लेकर शेष भोजन उन्होंने हमें लौटा दिया जिसे सपरिवार व मित्रों के साथ हमने पुष्करराज के घाट पर बैठ कर किया। बिना घी और अन्य मसाले वाले उस दिन के भोजन में जो स्वाद मिला वह मधुर पकवानों में भी कहीं नहीं मिला, उस दिन के भोजन के सम्बन्ध में मित्रों सहित हम सभी लोगों की एक ही जैसी अनुभूति थी, श्री मद्‌भगवतगीता में यज्ञ शेष भोजन करने के आदेश की सार्थकता की अनुभूति मुझे उसी दिन हुई–

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति, ब्रह्म सनातनम्।

नायं लोकोऽस्त्य यज्ञस्य, कुतोऽन्यः कुरु सत्तम्।। (४/३१)

अर्थात् यज्ञ से बचा हुआ अमृत भाग होता है। उसको ग्रहण करने से सनातन ब्रह्म की प्राप्ति होती है। पंच महायज्ञों से रहित पुरुष को यह लोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक कैसे सुखदायक होगा, वास्तव में यज्ञ–परायण पुरुष का चित्त हर समय प्रसन्न रहता है।

भोजन का स्थान साफ–सुथरा और सुन्दर होना चाहिए, मौन रहकर और चबा–चबाकर भोजन करने से भोजन परिणाम में सुखकर होता है, भोजन का काल प्रातः, मध्याह्न और सायं समय पात्र–भेद से थोड़ा बहुत भिन्न हो सकता है, भोजन का सही समय वह है जब जठराग्नि दीप्त हो। जैसे जलती हुई अग्नि में आहुति डालने पर ही वह भस्म हो पाती है उसी प्रकार अच्छी भूख लगने पर भोजन करने पर शरीर में बल और वीर्य बढ़ता है। भूख का लक्षण आयुर्वेद शास्त्रकारों ने बताया है कि जब मन में भोजन करने का उत्साह हो, शरीर में हलकापन हो और डकार आती हो उस समय दायाँ स्वर चलते समय आधा पेट भोजन करना चाहिए। पेट का १/४ भाग पानी से तथा १/४ भाग वायु के लिये छोड़ देना चाहिए। भोजन

करते समय आस-पास की वस्तुओं का भी मन पर प्रभाव पड़ता है। इसीलिये हिन्दुओं के आचार-संहिताकारों ने कहा है कि भोजन से पूर्व ब्राह्मण, गौ, पुष्प तथा देव दर्शन करने से मन में सात्विक भावों का संचार होता है। भोजन परोसने वाला यदि प्रसन्न चित्त, दयालु और आस्तिक है, तो उसके शरीर से निकलने वाली भावनाओं की धाराओं का प्रभाव भोजन पर पड़ता है। कल्याण में महाशय कृष्ण ने अपने कारावास के जीवन के स्मरण में लिखा था कि कई दिन वे भयानक बलाकार तथा हत्याओं के दृश्यों के स्वप्नों से बेचैन रहते थे। जब उन्होंने इसके कारणों का पता लगाया तो मालूम हुआ कि भोजन बनाने वाला एक कत्ल में सजा पा रहा है और जहाँ वे भोजन करते हैं उस कोठरी में उनसे पहले बलात्कार के अभियोग में दण्डित कोई अपराधी वहाँ रहता था। उसके परमाणु वहाँ सक्रिय थे और उन दोनों का भोजन पर प्रभाव था जिसके कारण दुःस्वप्न उन्हें परेशान कर रहे थे।

नेक कमाई से अर्जित अन्न मन को प्रसन्नता देता है। माँस-भक्षण से मन में कुटिल भावनायें पैदा होती हैं। अतः निरामिष और सात्विक भोजन करना चाहिए। गीता के सत्रहवें अध्याय में आहार को तीन प्रकार का बताया गया है—सतोगुण प्रधान, रजोगुण प्रधान तथा तमोगुण प्रधान—

आयु सत्त्वबलारोग्य, सुखप्रीतिविवर्धना:।

रस्या: स्निग्धा: स्थिरा, हृद्या आहारा: सात्विकप्रिया:।

अर्थात् आयु, बल, बुद्धि, आरोग्य और सुख और प्रीति-वर्द्धक रसयुक्त, चिकने, वीर्य पुष्ट करने वाले तथा हृदय को आहलादित करने वाले पदार्थ सात्विक कोटि के हैं। कड़वे, खट्टे, नमकीन, तीखे, अत्यन्त गर्म, रूखे और चरपरे पदार्थ दुख, चिन्ता तथा रोगों को उत्पन्न करने वाले राजस पदार्थों में आते हैं। रात्रि का रखा हुआ भोजन, रस और गन्धहीन, उच्छिष्ट तथा अपवित्र भोजन तामस कोटि का होता है। ऐसे भोजन से मन और इन्द्रियों में अज्ञान तथा जड़ता आती है।

आहार के अतिरिक्त मन की प्रसन्नता के लिये व्यायाम आवश्यक है। दण्ड बैठक या आसन, प्राणायाम आदि क्रियाओं से नाड़ी शुद्धि होती रहती है। नाड़ी-शुद्धि से चक्र-शुद्धि होती है तथा कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है। व्यायाम भी नियमित और शरीर की क्षमता के अनुसार करना हितकर होता है। अधिक मात्रा में और गलत ढंग से करने पर लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है।

शान्त भाव से भगवत-चिन्तन करना तथा एकान्त सेवन और मौन रहना चित्त की प्रसन्नता को बढ़ाता है। दान और परोपकार की भावना से मनुष्य का चित्त सत्त्व प्रधान हो

जाता है। परोपकार–परायण व्यक्ति का मन स्वार्थ की दीवारों को तोड़कर आत्म–विस्तार पाता है। व्यष्टि में बन्धन है और समष्टि में मोक्ष है। जिन लोगों का स्वभाव परोपकारी बन जाता है, उनका जीवन सुख और आनन्द की वर्षा करने वाला हो जाता है। एक बार अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन सीनेट में कीचड़ से लतपथ कपड़ों में आये। उन्हें देखकर लोगों को आश्चर्य, दया और हँसी तथा क्रोध आया। उन्होंने भीगने का कारण बताया कि एक सुअर कीचड़ में पड़ा हुआ चीख रहा था। उसकी मदद करने के लिये वे कीचड़ में घुस गये और उसे बाहर निकाल लाये। इस घटना को सुनकर लोगों ने उनकी बहुत प्रशंसा की। उन्होंने अपने प्रशंसकों से कहा कि इसमें प्रशंसा की कोई बात नहीं है। मैंने सुअर पर कृपा करने के लिये उसकी सहायता नहीं की बल्कि अपने मन को प्रसन्न रखने के लिए ऐसा किया। यदि मैं उसे यों ही चीखता छोड़कर चला आता तो मेरा मन बड़ा बोझिल बना रहता। अब चाहे मेरे कपड़े गन्दे हों पर मेरा मन बहुत प्रसन्न है। इसी प्रकार दान से भी मन में प्राणिमात्र की हित कामना आती है। प्रकृति का यह नियम है कि 'जैसा, हम बोते हैं, उसका कई गुना बढ़ा हुआ काटते हैं। दूसरे का हित–चिन्तन करने से हमारा भी हित–साधन होता है। हमारे मन की भेजी हुई तरंगें दूसरी ओर से टकरा कर शताधिक मात्रा में हमें ही प्राप्त होती हैं। सत विचार, सत्कर्म और शुभ–संकल्प हम जिसके प्रति भी करते हैं उससे चाहे उसका भला हो या न हो पर अपना भला अवश्य होता है। चित्त में सत्व गुण का उद्रेक हो जाता है जिससे उस क्षण होने वाले प्रारब्ध कर्म के भोग पर उसका प्रभाव पड़ता है। यदि उस समय क्लिष्ट कर्मों का भोग काल आ गया है और उसका भोग चित्त को अधिक कष्ट देने वाला तथा अधिक समय तक चलने वाला है तो चित्त के उच्च भूमिका में आरूढ़ होने पर उसका भुगतान स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म मन से अपेक्षाकृत कम समय में हो जाता है। गुरुदेव के कृपाकणों को पा कर ध्यान योग में प्रविष्ट अधिकांश गुरुभाई साधकों के जीवन में ऐसी अनेक अनुभूतियाँ प्रायः होती रहती हैं।

चित्त की प्रसन्नता चित्त के आलम्बन और उद्दीपन पर निर्भर करती है। जिस गुण के साथ चित्त अपना नाता जोड़ता है, उसी रंग में रंग जाता है। यदि चित्त को प्रसन्न रखना है तो चित्त को सजातीय तत्व से लगाने का अभ्यास करना चाहिए। 'सत्वं सुखे संजयति' के सिद्धान्त के अनुसार सतोगुण प्रधान पदार्थों से ही प्रसन्नता और सुख की अनुभूति हो सकती है। चित्त को सतोगुण प्रधान पदार्थों का आलम्बन और आश्रय बनाने से उसी वस्तु का बिम्ब और प्रतिबिम्ब चित्त को तदाकाराकारित कर देता है। राम रूप का जब चित्त आलम्बन बनता है तो चित्त में श्रद्धा, शील और मर्यादा का भाव चाँदनी की छटा की तरह छाने लगता है। इसके विपरीत जब चित्त रावण रूप आलम्बन का आश्रय बनता है तो चित्त में हिंसा, घृणा, दर्प आदि

के भाव निष्पन्न होने लगते हैं। अतः सिद्ध, सन्त प्रेरणा प्रदायक सत्साहित्य तथा अच्छे मित्र चित्त को प्रसन्न करने में सहायक होते हैं। मित्रों का चुनाव बड़ी सावधानी से करना चाहिए क्योंकि हमारा चित्त मित्रों के चित्त का आलम्बन बनता है। यदि मित्र अच्छे हैं तो उनके मन की तरंगें हमारे मन को आनन्दित करेंगी। उद्दीपन भी मन को प्रभावित करता है। नदी–तट, प्रातःकालीन शोभा, पर्वतीय प्राकृतिक सुषमा से मन में ताजगी और चेतना तरंगित होती है। ब्राह्म–मुहूर्त का समय चेतना और प्रसन्नता का खजाना हर प्राणी को लुटाता है। उस समय ध्यान और उपासना करने से चित्त में सत्त्व गुण की वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप चित्त प्रसाद बढ़ता जाता है। उसको पा कर साधक ध्यान, धारणा और समाधि में प्रवेश करने योग्य हो जाता है। संगीत और कला के अभ्यास से भी चित्त एकाग्र और विशुद्ध होने लगता है।

भगवान पतंजलि ने चित्त–प्रसादन के कुछ अन्य उपायों का उल्लेख 'योग–दर्शन' में इस प्रकार किया है–

मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणाम् सुख दुःख पुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्।।

(१/३३)

अर्थात् सुखी मनुष्य में मित्रता की भावना करने से, दुःखी मनुष्य में दया की भावना करने से, पुण्यात्मा पुरुषों में प्रसन्नता और श्रद्धा भावना करने से चित्त के द्वेष, घृणा, क्रोध, ईर्ष्या आदि मलों का नाश होकर चित्त निर्मल हो जाता है। निर्मल चित्त में स्थिरता आने लगती है। दूसरा उपाय प्राणायाम है। रेचक, कुम्भक व पूरक प्राणायाम के अभ्यास से शरीर का नाड़ी–शोधन होता है और उससे भी चित्त में सत्त्व और प्रसन्नता बढ़ती है। तीसरा उपाय योग दर्शनकार विषय वाली प्रवृत्ति को बताते हैं। ध्यानाभ्यास में साधक को अभ्यास करते दिव्य अनुभूतियाँ होने लगती हैं। उन दिव्य अनुभूतियों का अनुभव करने वालों की वृत्ति विषयवती प्रवृत्ति है। उस दृश्य का पुनः पुनः स्मरण करने से मन में एक हिलोर उठती है—अहा कितना अनुपम, कितना सुन्दर तथा वह क्षण, क्षण–क्षण ऐसी स्मृति से मन में स्थिरता आती है और साधक उत्तरोत्तर योग की भूमिकाओं में बढ़ता चला जाता है।

चित्त–प्रसादन उपोतिष्मती प्रवृत्ति से भी होता है। अभ्यास करते–करते साधक को परमानन्ददायी किसी अलौकिक दृश्य का साक्षात्कार हो जाये तो मन उसका इतना लोभी हो जाता है कि उस दृश्य को एक क्षण के लिये भी अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देता। रसखान के शब्दों में 'वा छवि को रसखान विलोकत, वारत काम कलानिधि–कोटी' की स्थिति में रहने लगता है।

'वीतराग विषयम् वा चित्तम्'

अर्थात् मुक्तात्मा तथा विरक्त पुरुषों के चरित्रों का श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करने से चित्त स्थिर और शुद्ध हो जाता है। इसके अतिरिक्त स्वप्न और प्रगाढ़ निद्रा के ज्ञान का अवलम्बन करने वाला चित्त भी शान्त और प्रसन्न हो सकता है। जैसे स्वप्न में कोई दिव्य अनुभव हुआ तथा इष्ट देव की कृपा हुई उसका मन में पुनः पुनः स्मरण और अभ्यास करते रहने से मन स्थिर होता है। उसी प्रकार गाढ़ निद्रा में मन अत्यन्त आनन्द का अनुभव करता है। उस समय चित्त की सभी वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं। शास्त्रकारों ने निद्रा को समाधि की स्थिति कहा है–'निद्राः समाधिस्थिति' निद्रा और समाधि में आनन्द की अनुभूति होते हुए भी भिन्नता है। निद्रा में चित्त की वृत्तियों का बाध हो जाता है किन्तु उस समय वृत्तियों के अभाव का ज्ञान और ज्ञाता ये दोनों रहते हैं जब कि समाधि में भावरूप ज्ञेय पदार्थ ही अवशिष्ट रहता है जो स्वंय आनन्द ही है। श्वेताश्वेतरोपनिषद में बताया है कि समाधि अवस्था में कैवल्य प्राप्ति बौद्ध लोगों के निर्वाण की तरह नहीं है। बौद्धों का निर्वाण तो निद्रा की तरह अभाव वृत्ति का ज्ञान मात्र है। कैवल्य प्राप्ति सत् चित् आनन्द के भाव रूप की प्राप्ति है। दुःखों का अभाव और सुख की प्राप्ति दो भिन्न–भिन्न अवस्थाएँ हैं। योगी को केवल दुःख का अभाव ही नहीं होता अपितु शाश्वत सुख की प्राप्ति भी होती है–

यदाऽऽत्मतत्त्वेन तु ब्रह्म तत्त्वं, दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्।
अजं ध्रुवं सर्व तत्त्वैर्विशुद्ध, ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥ (२/६५)

अर्थात् जब योगी दीपक के सदृश प्रकाशमय ऋतम्भरा प्रज्ञायुक्त आत्म तत्त्व के द्वारा ब्रह्म तत्त्व को भलीभाँति प्रत्यक्ष कर लेता है उस समय वह उस अजन्मा, निश्चल तथा अन्य समस्त तत्त्वों से विशुद्ध परमात्मा को जान कर सब बन्धनों से सदा के लिये मुक्त हो जाता है। निद्रा के आनन्द के ज्ञान का अवलम्बन करने से साधक ज्ञानरूप पदार्थ को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार स्वप्न और निद्रा के ज्ञान का अभ्यास करने से भी चित्त प्रसन्न रह सकता है। एक ही प्रकार का साधन और उपाय हर साधक के लिये अनुकूल नहीं हो सकता। अपनी शक्ति, सामर्थ्य और मन की वृत्ति तथा रुचि के अनुसार भिन्न–भिन्न उपायों में से किसी एक उपाय का अभ्यास कर के अपने जीवन को योगमार्ग की साधना के लिये तैयार करना चाहिए तथा एक कुशल सैनिक की भाँति जीवन–संग्राम को सफलता पूर्वक लड़ने के लिये अपने शारीरिक और मानसिक तनाव और कुण्ठाओं से छुटकारा पा कर अपने को और अपने परिवार को तथा अपने समाज को प्रकाश, उत्साह तथा आशा की किरणें देते रहना चाहिए।

प्रथम सिद्धयोग शिविर नागपुर

—अनिल दुबे, दतिया

ओरेन्ज की नगरी नागपुर में प्रथम सिद्धयोग साधना शिविर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की अनुपम कृपा से सिद्धगुफा सवाई आश्रम (आगरा) के आचार्य योगी डॉ. दासलाल जी महाराज के सानिध्य में दिनांक 27 नवम्बर से 30 नवम्बर 2018 तक निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार प्रातः 5:30 बजे प्रभुजी के आरती, एक घण्टे ध्यान, जीवन तत्व क्रियायें, योगासन, प्राणायाम, गीता पाठ एवं सार प्रवचन हुआ करते थे।

सायं 4 बजे महिला मंडल द्वारा संकीर्तन, भजन, योग पर व्याख्यान अन्त में श्री प्रभुजी की दिव्य आरती हुआ करती थी।

आचार्य जी ने गीताजी के 12, 13, 14 एवं 15वें अध्याय के पाठ के साथ गीता जी की महिमा को विस्तार से समझाते हुए बतलाया कि गीता को भली–भाँति पढ़कर और भाव सहित अन्तःकरण में धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है इसी में हम सभी का कल्याण है। गीता जी के गूढ़ रहस्यों को बड़े ही सरल शब्दों में समझाया जिसे सुनकर गुरु भक्तों का हृदय भाव विभोर हो गया।

आचार्य जी ने अपने व्याख्यान में गीता, योग दर्शन, उपनिषद्, वेद, पुराण, शिव संहिता आदि ग्रंथों के माध्यम से योग की अद्भुत शक्तियों पर प्रकाश डालते हुए बतलाया कि योग ही एक ऐसी विद्या है कि जिसके जान लेने से सब कुछ जान लिया जाता है कुछ भी शेष नहीं रह जाता है। अतः इसी में हम सभी की भलाई एवं कल्याण है कि योग के पवित्रतम रास्ते पर हम सभी चलें।

प्रथम दिवस आचार्य जी ने अपना व्याख्यान योग दर्शन के प्रथम सूत्र अथ योगानुशांनम एवं चित्त वृत्ति निरोधाः से प्रारम्भ किया एवं धीरे–धीरे क्लेश, समाधि के प्रकार, अष्टांग योग कठिनतम, शक्तियों साधनों को बड़े ही सरल शब्दों में समझाया। यही व्याख्यान का उद्देश्य है। कठिन से कठिन प्रकरणों को अपनी वाणी से सरल शब्दों में समझा देना यही विशेषता हमारे आचार्य जी में है।

कार्यक्रम में छिंदवाड़ा से स्वामी श्री नागेन्द्र जी, सालवान से श्री फक्कड़ बाबा, गोवर्धन से श्री मोहन स्वरूप जी, बनारस से प्रदीप, राघवेन्द्र, गंगापुर से घनश्याम, पंकज, गोविन्द, सवाई से दलवीर परिवार सहित, दतिया से अनिल दुबे, महाराष्ट्र से पुरुषोत्तम बाबाजी, हरियाणा से सूरजमल, कृष्णदेव पण्डित, मंडी हि. प्र. से रमेश कुमार मेहता, दिल्ली से ईश्वर गोयल, जयपुर से सत्य प्रकाश गुप्ता आदि गुरु भाईयों की उपस्थिती रही। गुरु भाईयों ने

गुरुदेव के सुन्दर भजनों को सुनाया। स्वामी नागेन्द्र जी ने श्री गुरुदेव के जीवन चरित्र के साथ सुन्दर भजनों को सुनाया।

यह सब प्रभुजी की कृपा ही है कि प्रथम बार ही योग शिविर कार्यक्रम दिव्य, अनुशासित एवं व्यवस्थित हुआ जिसमें नागपुर के वरिष्ठ गुरुभाई श्री शीलेन्द्र शिवलिया सपत्नि का विशेष योगदान रहा। श्री शिवलिया जी बड़े ही सरल एवं व्यक्तित्व के धनी जिन्होंने उत्तम व्यवस्था होते हुए भी सभी गुरुभाईयों से व्यवस्था में कमी के लिये क्षमा माँगी एवं अगले वर्ष और अच्छी व्यवस्थाओं के लिये कहा। श्री सतीश दीक्षित सपत्नि, श्री दीपक जोशी सपत्नि, आशीष शुक्ला, सुरेन्द्र मोहन, ललित अग्रवाल आदि गुरुभक्तों का भी कार्यक्रम में समर्पण भाव रहा। अन्तिम दिन प्रभुजी के अष्टोत्तर शतक से हवन एवं विशाल भंडारे के साथ श्री शीलेन्द्र शिवालिया ने सभी का आभार व्यक्त किया। योगी डा. दासलाल जी महाराज ने सभी को प्रसाद वितरण कर आशीर्वाद दिया। आचार्य जी को सभी ने स्टेशन पहुँच कर भावभीनी विदाई दी।

दतिया का 15वाँ योग शिविर कार्यक्रम

माँ बगलामुखी एवं पीताम्बरा पीठ की पवित्र नगरी दतिया में प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी 15वाँ दिव्य सिद्धयोग साधना शिविर दिनांक 4 दिसम्बर से 6 दिसम्बर 2018 तक बड़ी धूम–धाम से मनाया गया।

महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के आशीर्वाद से श्री सिद्धगुफा संवाई आश्रम के आचार्य योगी डा. दासलाल जी महाराज के यौगिक संरक्षण में योग शिविर कार्यक्रम चला।

यह प्रभुजी की ही कृपा है कि इस वर्ष भी करीब 26 नये गुरुभाई प्रभु दरबार से जुड़े। प्रातः 5:30 बजे प्रभुजी की आरती, एक घण्टे ध्यान के बाद जीवन तत्व क्रियायें, योगासन, प्राणायाम, सूर्य नमस्कार के उपरान्त गीता पाठ एवं गीता जी पर सार प्रवचन हुये। सायं 4 बजे से शास्त्रीय संगीत एवं गुरुदेव के भजनों की प्रस्तुति दी गयी। रात्रि में एक घण्टे योग पर व्याख्यान एवं अन्त में प्रभुजी की दिव्य आरती हुयी।

आचार्य जी प्रतिवर्ष गुरु भक्तों को योग के माध्यम से चेताने आते हैं। गुरु मंत्र का जप एवं ध्यान पर उनका विशेष बल रहता है। अपने व्याख्यान में **'यस्मिन ज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति सैषा योग विद्या'** अर्थात् जिसके ज्ञान लेने पर सभी कुछ जान लिया जाता है वह योग विद्या है। योग से ही मनुष्य धनी बनता है, सर्वज्ञाता बनता है इसलिये दो घण्टे जाप एवं एक घण्टा ध्यान करने का संदेश आचार्य जी ने सभी को दिया। गीता जी के गूढ़ रहस्यों को समझाया। विस्तार से नहीं लिख पा रहा हूँ परन्तु इस वर्ष प्रतिवर्ष की भाँति आचार्य जी का

व्याख्यान अद्वितीय रहा।

शास्त्रों की कठिन भाषा को समझाने की आचार्य जी में बड़ी ही विलक्षण कला है चाहे वह योग दर्शन, गीता, उपनिषद्, वेद, पुराण आदि हो बड़े ही सरल शब्दों में समझा देते हैं। जिस प्रकार हमारे गुरुदेव परम योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने व्याख्यान में अपने बच्चों को समझाया करते थे उन्हीं की कार्यशैली एवं परम्परा को श्री आचार्य जी आगे बढ़ा रहे हैं उनके ऊपर गुरुदेव की असीम कृपा है इसमें कोई सन्देह नहीं। आचार्य जी के व्याख्यान का यदि सारांश देखा जाये तो जप एवं ध्यान ही उनका मुख्य बिन्दु रहता है जिसके अभ्यास से मनुष्य धीरे–धीरे अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। हम सभी गुरु भक्तों का कर्त्तव्य बनता है कि हमें गुरुदेव के आशीर्वाद वचनों का तत्परता के साथ पालन करना चाहिए। यही परम सत्य है। नागपुर में आचार्य जी ने 7 लोकों का जब वर्णन करके बतलाया कि गुरुदेव अपने ध्यानी बच्चों कि किस समय एवं कैसे रक्षा करते हैं एवं इन्द्र लोक के ऊपर के दिव्य लोकों में भेजने के लिये सद्‌गुरु किस प्रकार रक्षा करते हैं।

एक दिन झाँसी से पधारे विख्यात शास्त्रीय संगीत के कलाकार श्री समीर भालेरावकर जी ने गुरुदेव के दरबार में हाजरी लगाई, वर्ष 2014 में स्थापित प्रभु श्री रामलाल संगीत विद्यालय दतिया के छात्र/छात्राओं ने संगीत आचार्य श्री विजय शंकर भट्ट के निर्देशन में गुरुदेव के भजन एवं तबला की प्रस्तुति दी। गुरुदेव की कृपा से नन्ने, मुन्ने बच्चों की नई पौध तैयार हो रही है। आने वाले समय में यही बच्चे प्रभु रामलाल संगीत विद्यालय दतिया का नाम रोशन अवश्य करेंगे। अंतिम दिन बच्चों को आचार्य द्वारा प्रमाणपत्र एवं शॉल ओढ़ाकर बच्चों का उत्साहवर्धन किया गया एवं विद्यालय के सभी बच्चों ने आचार्य जी से आशीर्वाद प्राप्त किया। दतिया के समस्त गुरुभाईयों ने कार्यक्रम में पूर्ण सहयोग प्रदान किया। अंतिम दिन विशाल भण्डारे के साथ श्री चन्दन सिंह गुर्जर (बाबूजी) ने समस्त गुरुदेव के शिष्यों का कार्यक्रम में सहयोग हेतु आभार व्यक्त किया।

7 दिसम्बर प्रातः 6 बजे आचार्य जी दो दिवसीय योग प्रचार कार्यक्रम के लिये ग्वालियर रवाना हुये जहाँ श्री प्रदीप द्विवेदी के निवास पर 7 एवं 8 दिसम्बर को योग शिविर कार्यक्रम हुआ। प्रातः आरती, गीता पाठ, सार प्रवचन, जीवन तत्त्व क्रियायें सायं गुरुदेव के भजन योग पर व्याख्यान एवं प्रभुजी की दिव्य आरती हुयी। योग शिविर में कालोनी के लोगों ने बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया। आचार्य जी ने अपने व्याख्यान में जप, ध्यान पर विशेष बल दिया एवं सभी को दो घण्टे जप एवं एक घण्टा ध्यान का संदेश दिया। अंतिम दिन प्रभुजी का भण्डारा हुआ। 9 दिसम्बर को आचार्य जी मुरैना के लिये प्रस्थान किये।

प्रभु चन्द्रमोहन अष्टक

श्री मद गुरुणां पद पदमव्यानं समस्त देवार्चन वन्दनाद्वरम्।
वाचस्तु तेवा सकलार्थ पूरका : पुनान्तु माँ गुरुपाद पांसव :।।1।।

अनन्त श्रीभि : समलंकृतोयो योगाग्निना तप्त सुवर्ण देह :।
कारुण्यमूर्ति : करुणार्णवोय : पुनान्तु माँ श्री गुरुपाद पांसव :।।2।।

भक्ताय य : कल्पद्रुमस्तु साक्षात् यद्दर्शन पुण्यचयोर्द भवाय।
विभाति यस्यार्क निभंतु तेज : पुनान्तु माँ श्री गुरुपाद पांसव :।।3।।

करोतिध्वंसं सकलंतु कल्मषं गंगेव पापं हरते समग्रम।
शशीवे सौम्य : सुशीतल : पुनान्तु माँ श्री गुरुपाद पांसव :।।4।।

आगत्य भुविय : शिवरूप एवं, योगाय दीक्षामददज्जनेभ्य :।
भय तापतप्ताय परमौषधोय : पुनान्तु माँ श्री गुरुपाद पांसव :।।5।।

श्री रामलालस्य महाप्रभोर्वै कृपांशमूलोऽस्ति महान गुरुर्न :।
अस्मत्कृते स : परमेष्ट देवता, पुनान्तु माँ श्री गुरुपाद पांसव :।।6।।

अस्मद् गुरुणां महनीयवर्चसां वाणी गुणानां कथनेऽस्ति न क्षमा।
स एव ब्रह्मा विभुरस्ति शंकर : पुनान्तु माँ श्री गुरुपाद पांसव :।।7।।

योगीश्वर स परमेश्वरोन : अस्मत्कृते स : सर्वार्थ सिद्धि द :।
वसेत्सदा स मम नेत्रयोर्द्वयो, पुनान्तु माँ श्री गुरुपाद पांसव :।।8।।

●●●

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/18-20

JANURARY 2019

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

□□□□□□

सद्भिः संग प्रकुर्वीत सिद्धिकामः सदा नरः। नासिद्भिरिह लोकाय परलोकाय वा हितम्।
पण्डितैश्च विनीतैश्च धर्मज्ञैः सत्यवादिभिः। बंधनस्थोऽपि तिष्ठेच्च न तु राज्ये खलैः सह।।
(गरुड़पुराण, नीतिसार)

सिद्धि चाहने वाला पुरुष सदा ही सत्पुरुषों से संग करे, न कि असत्पुरुषों से। असत्पुरुषों का संग इहलोक या परलोक में कभी भी हितकर नहीं होता। पण्डित, विनीत, धर्मज्ञ और सत्यवादियों के साथ बंधनयुक्त (कष्टयुक्त) रहते हुए भी निवास करे, परन्तु राज्य प्राप्ति होने पर भी दुष्टों के साथ निवास न करे।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दाऊलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. न. UPHIN/2004/14566
सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दाऊलाल शर्मा